निर्मल कुमार बोस

एक घुमक्कड़ विद्वान

राष्ट्रीय जीवनचरित

निर्मल कुमार बोस

एक घुमक्कड़ विद्वान

सुरजीत सिन्हा

अनुवाद

तृप्ति जैन

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

विषय सूची

प्रस्तावना

(मूल अंग्रेजी के पहले संस्करण से)

कुछ वर्ष पहले मैंने एक आलेख लिखा था, "निर्मल कुमार बोस का मानव विज्ञान*।" मैंने प्रो० बोस की विलक्षण बौद्धिक रुचियों तथा उनके मौलिक और मर्मज्ञ चिंतन का उनके स्वनिर्मित अन्वेषण के क्षेत्रों में किये गये प्रयोग को चित्रित करने का प्रयास किया है। उनका जीवन और लेखन अदम्य उत्साह द्वारा संचालित एक व्यक्ति का अभिलेख है। उन्होंने सैद्धांतिक सोच और ज्ञान के उपयोग व समाज विज्ञान और मानविकी के बीच अनुशासन विशेष और रूढ़िवादी विभाजनों की सीमाओं का खुलकर अतिक्रमण किया। वह भारतीय सभ्यता की अनवरत शक्ति के मूल, और वर्तमान युग में सृजनात्मकता की राह में आने वाले अवरोधों के कारणों को ढूंढ़ना चाहते थे। प्रो० बोस मानवीय स्थितियों को पूर्णतया जानने के लिए प्राय: किताबी ज्ञान का सहारा नहीं लेते थे और घुमंतु वैज्ञानिक परिव्राजकेर का-सा जीवन जीते थे। 1920 के आसपास वह महात्मा गांधी के विचारों एवं लेखन की ओर आकृष्ट हुए तथा मुख्यतया प्रकाशित आलेखों के विश्लेषण पर आधारित अनेक पुस्तकें लिखीं। गांधी जी ने उन्हें अपनी कार्यप्रणाली देखने तथा उसके बाद अंतिम निर्णय लेने के लिए आमंत्रित किया। प्रो० बोस 1946-47 के दौरान नोआखली में कई महीनों तक गांधी जी के बांग्ला दुभाषिए और निजी सचिव बनकर रहे। उन्होंने अपने इस समय के अनुभवों को 'माई डेज विद गांधी' नामक पुस्तक में विस्तार से लिखा।

मैंने अक्सर अनुभव किया है कि शिक्षित लोगों, विशेषकर युवा वर्ग में इस विलक्षण भारतीय, निर्मल कुमार बोस की बौद्धिकता व मानवीय गुणों की प्रवृत्ति को जानने की अधिक जागरूकता होनी चाहिए।

---

* 'एंथ्रोपोलोजी आफ निर्मल कुमार बोस', इंडियन एंथ्रोपोलोजिकल सोसायटी का जर्नल, खंड-5, सं. 1-2, 1970

मैं नेशनल बुक ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री कृष्ण कृपलानी का कृतज्ञ हूं कि उन्होंने मुझे ट्रस्ट की 'राष्ट्रीय जीवनचरित' पुस्तकमाला के अंतर्गत निर्मल कुमार बोस का संक्षिप्त जीवनचरित लिखने के लिए आमंत्रित किया। इससे मुझे प्रो० बोस का एक बृहद जीवनचरित लिखने की प्रेरणा मिलेगी।

प्रो० बोस, जिनके जीवन के अंतिम 22 वर्षों से मेरा परिचय था, के जीवन, व्यक्तित्व और गतिविधियों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध करवाने में बहुत लोगों ने मेरी सहायता की। मैं विशेषरूप से उनकी विधवा भतीजी, स्व० विभामयी बसु और उनके पुत्र रवीन्द्रनाथ बसु का उल्लेख करना चाहूंगा जिन्होंने इस घुमक्कड़ विद्वान को कई वर्षों तक अपने घर में शरण दी। सहयोग प्रदान करने वाले अन्य व्यक्तियों—पी.सी. जोशी, मुख्य न्यायाधीश-अमलकुमार सरकार, अजित रे, मनोरंजन गुहा, अतुल्य घोष, प्रफुल्ल सेन, हितैषरंजन सान्याल, गौतम शंकर रे, अन्नदा भगवती, कोनानगोपाल बागची, विजय भट्टाचार्य, विष्णु मुखर्जी, सेबती मित्रा, उषा सेन, मीरा मुखर्जी, ईवा फ्रेडलैण्डर तथा योलोतोल गोंजल्स का उल्लेख करना चाहूंगा। प्रो० बोस स्वयं अपनी सभी रचनाओं की अद्यतन संदर्भ सूची बनाते थे। वह नियमित रूप से डायरी भी लिखते थे। रवीन्द्रनाथ बसु ने जीवनचरित लिखते समय मुझे ये दस्तावेज उपलब्ध कराये।

'सेंटर फार स्टडीज इन सोशल साईंसेज़', कलकत्ता के गौरी बंद्योपाध्याय, शिखा चक्रवर्ती तथा आर.के. मेहतो के प्रति मैं धन्यवाद ज्ञापित करता हूं, जिन्होंने पांडुलिपि के कई प्रारूपों को टंकित किया। सी.एस.एस.एस.सी. के श्री वी.ए. कुट्टी ने इस जीवनचरित के लिए सामग्री जुटाने में कई प्रकार से सहायता की।

मैं अपनी पत्नी पूर्णिमा सिन्हा की टिप्पणियों से भी बहुत लाभान्वित हुआ हूं; जो पांडुलिपि तैयार करने के विभिन्न चरणों में सहयोगी रही हैं।

सुरजीत सिन्हा

सेंटर फार स्टडीज इन सोशल साईंसेज़, कलकत्ता
"जदुनाथ भवन"
कलकत्ता-700 029
1 जुलाई, 1984

1

परिचय

निर्मल कुमार बोस का निधन 15 अक्तूबर, 1972 की सुबह हुआ। उनके निधन से भारत ने एक प्रमुख जीववैज्ञानिक, गांधीवाद का एक श्रेष्ठ प्रतिनिधि, एक महान राष्ट्रवादी और सर्वतोन्मुखी सर्जनात्मकता का एक असाधारण उदाहरण खो दिया। वे उन्नीसवीं शताब्दी के बंगला पुनर्जागरण के अवशेष थे।

निर्मल कुमार बोस ने बांग्ला और अंग्रेजी-दोनों में बहुत कुछ लिखा है। और भी अनेक विषयों पर उन्होंने लिखा-जीवविज्ञान, मंदिरों की स्थापत्यकला, प्रागैतिहासिक पुरातत्व विज्ञान, भूविज्ञान, मानव भूगोल, सामाजिक इतिहास, कला, राजनीति, शिक्षा, समाजसेवा तथा गांधीवाद। वे चाहते थे कि उन्हें एक वैज्ञानिक के रूप में पहचाना जाये। ''एक जीववैज्ञानिक, जिसका इतिहास के प्रति एक स्वाभाविक झुकाव है'' जो ज्ञान का प्रयोग एक ऐसी सभ्यता के पुनरुद्धार के लिए करना चाहता था जो उपनिवेशवाद और पराधीनता से जकड़ी हुई है।

वे पचास वर्षों से कुछ अधिक समय तक महात्मा गांधी के विचारों, कार्यों और व्यक्तित्व का आलोचनात्मक और रचनात्मक अध्ययन करते रहे, परंतु उनके परंपरावादी समर्थक बनने से हमेशा इंकार करते रहे। वे स्वयं को एक वैज्ञानिक और जिज्ञासु के रूप में पारिभाषित करते थे। उन्हें निकट से जाननेवाले जानते थे कि उनमें कितनी गहरी कलात्मक संवेदनशक्ति थी और दीन-दुखियों के प्रति उनके मन में कितनी करुणा थी। वे अपनी योजनाओं को युद्ध स्तर पर तैयार करते थे। गांधीवादी अहिंसा का यह समर्थक युद्ध-विज्ञान पर लिखी पुस्तकों में रुचि रखता था और सैन्य संचालन में पाई जाने वाली कार्यक्षम भावना पर मोहित था।

उनका बाहरी रूप संयत और कठोर था और वाद-विवाद में उनकी भाषा कटु और उत्तेजनापूर्ण हो जाती थी, जिसके पीछे एक सहृदय, भावुक कलाप्रेमी, उदार और संवेदनशील व्यक्तित्व रहता था। इस असाधारण और जटिल व्यक्तित्व की गहराइयों को समझ पाना कठिन है। मैं केवल उन्हें उनके सामाजिक परिवेश और काल-परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करूंगा, और उनकी जीवन संबंधी घटनाओं का उल्लेख कर उनकी सर्जनात्मक उपलब्धियों को उद्घाटित करने की चेष्टा करूंगा।

2

पालन-पोषण

उनके पिता डा. बिमनबिहारी बोस की डायरी से यह जानकारी मिलती है कि निर्मल का जन्म गोपीमोहन दत्त गली, बाग बाजार, कलकत्ता स्थित उनके मामा चंद्रकुमार सरकार के घर पर हुआ था। तारीख थी—22 जनवरी, 1901 ईस्वी। स्वयं बिमनबिहारी का जन्म 1869 में हुगली जिले के एक गांव दशघरा में हुआ था। उनके पिता भैरवचन्द्र बोस की किराने की छोटी-सी दुकान उत्तरी कलकत्ता में थी, हालांकि उनका संबंध मुईन नगर के प्रसिद्ध कायस्थ बोस परिवार से था। प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानी सत्येन बोस और नेता जी सुभापचंद्र बोस इसी वंश-परंपरा से संबंधित हैं। डाक्टरी की शिक्षा पूरी करने में बिमनबिहारी को बहुत कठिनाई हुई। कलकत्ता मेडिकल कालेज में अपनी शिक्षा पूरी करने के लिए उन्हें ट्यूशन करना पड़ा और छात्रवृत्ति पर भी निर्भर रहे। मित्रों के बहुत समझाने पर उन्होंने ईश्वरचंद्र विद्यासागर से कर्ज लिया और शिक्षा पूरी की। विद्यासागर से लाभ उठानेवालों के विपरीत डा. बोस ने समय पर कर्ज लौटाया। अपनी शिक्षा पूरी करने पर वह प्रांतीय राजकीय मेडिकल सेवा में सहायक सिविल सर्जन के पद पर नियुक्त हुए। बाद में सिविल सर्जन बने।

बिमनबिहारी का विवाह नवीनचंद्र सरकार की पुत्री किरण शशि देवी के साथ हुआ। नवीनचंद्र सरकार संपन्न व्यक्ति थे। वें बाग बाजार के रहनेवाले थे। उनके परिवार के बहुत से लोगों का ब्रह्म समाज के प्रति झुकाव था। किरण शशि के भतीजे अमलकुमार सरकार, जो कि भारत के मुख्य न्यायाधीश रह चुके हैं, के अनुसार किरण शशि देवी एक हद तक लड़ाकू एवं अभिमानी स्त्री थी। 1917 में उनके पति का देहांत हुआ, और फिर उन्होंने अपना शेष जीवन एक उच्च जातीय हिंदू विधवा के लिए जो कठोर नियम निर्धारित थे, उन्हीं के अनुसार बिताया। यह संभव है कि निर्मल कुमार बोस ने आत्मसंयम, स्वच्छता तथा मितव्ययिता के संस्कार अपनी माता से ग्रहण किये हों। परंतु अपनी मां के धार्मिक और सामाजिक रूढ़िवाद को उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

युवा निर्मल के मन में अपने पिता के स्वतंत्र चरित्र, विद्वता तथा व्यावसायिक निष्ठा के प्रति बेहद श्रद्धा थी। बिमनबिहारी अल्पभाषी व्यक्ति थे। उनको इस बात की प्रसन्नता थी कि उनका इकलौता पुत्र बुद्धिमान है, पढ़ने-लिखने में मन लगाता है और साथ ही

खेलकूद में भी रुचि रखता है। उन्होंने अपने पुत्र को कभी भी उसके शरारती व्यवहार के लिए नहीं डांटा। जब भी निर्मल की मां उसके खेल-कूद में लगे रहने पर चिंता व्यक्त करती थीं, तो पिता उन्हें समझाते हुए कहते, ''तुम देखना, निर्मल एक दिन बड़ा आदमी बनेगा।''

मुझे बताया गया है कि दस-ग्यारह वर्ष की आयु में निर्मल कुमार अपनी मां से कहा करते थे कि मैं घर त्यागकर देश की सेवा करूंगा। बिमनबिहारी गरीब बच्चों को अपनी पढ़ाई पूरी करने के लिए अपनी बचत से आर्थिक सहायता दिया करते थे। उन्होंने एक बार निर्मल को भी सलाह दी थी कि बड़ा होने पर यदि उसे पर्याप्त आमदनी हो, तो वह गरीब बच्चों की सहायता जरूर करे।

बिमनबिहारी की जब मृत्यु हुई, तो निर्मल केवल सत्रह वर्ष के थे। परंतु बेटे पर पिता के व्यक्तित्व का गहरा और सकारात्मक प्रभाव पड़ चुका था और उसने व्यावसायिक दृढ़ता, सुस्थिर प्रकृति, संतुलित मनोवृत्ति और गरीबों की सहायता करने की इच्छा जैसे सभी गुण अपना लिये थे। बिमनबिहारी काफी धन और दो मकान—एक रांची में और दूसरा पुरी में— छोड़कर गये थे। पिता के निधन के बाद निर्मल कुमार को किसी प्रकार की आर्थिक कठिनाई नहीं थी, किंतु वे सादगी से रहना पसंद करते थे और अपने पूरे खर्चे का हिसाब रखते थे। वे अपनी शिक्षा के कारण कलकत्ता में रहे और उनकी मां पुरी स्थित अपने घर सुधा-सिंधु में निवास करती रहीं। वह नियमित रूप से अपनी मां से मिलने जाते थे। वे पूरी तरह आत्मनिर्भर महिला थीं।

बिमनबिहारी एक ऐसे पद पर थे, जिसमें तबादले होते रहते थे। युवा निर्मल हर स्थान पर उनके साथ जाते थे। इसीलिए उन्होंनें शिक्षा भी विभिन्न स्कूलों में पाई। 1906 से 1911 तक पटना के संस्कृत स्कूल में, 1911 से 1912 तक सागर दत्त फ्री हाईस्कूल, कमारहाटी में, 1912 से 1916 तक रांची जिला स्कूल में और 1916 से 1917 तक पुरी जिला स्कूल में रहकर उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। उन सभी स्कूलों में वह अध्ययन तथा खेल-कूद, दोनों में आगे थे। पिता के देहांत से कुछ महीने पहले 1917 में उन्होंने कलकत्ता में स्काटिश चर्च कालेज में इंटरमीडियट कक्षा में विज्ञान विषय लेकर प्रवेश किया था। उनके पिता ने खर्चे के लिए चालीस रुपये प्रति माह निर्धारित किये थे। निर्मल उसी में अपना खर्च चलाते रहे।

स्काटिश चर्च कालेज में उनकी रुचि विज्ञान में और अधिक गहरी हुई, परंतु उनकी पसंद तथा उनका जीवन केवल अध्ययन तक ही सीमित नहीं था। उनके कुछ मित्र क्रांतिकारी गतिविधियों में संलग्न थे। साम्राज्यवादी व्यवस्था के अधीन रहने की पीड़ा का अनुभव बोस ने गहराई से किया और इसी कारण उनके मन में राष्ट्रीय स्वाधीनता और गरीबों के उद्धार के लिए अपने को समर्पित करने की भावना पैदा हुई। परंतु हिंसा और आतंकवादी गतिविधियों में उनकी कोई रुचि नहीं थी। उनका विचार था कि क्रांतिकारियों के पास एक नये भारत के निर्माण की कोई योजना नहीं है।

1917 में निर्मल कुछ दिनों के लिए बांकुड़ा गये, जहां उन्होंने ब्रह्म समाज के स्वयंसेवकों के एक दल के साथ मिलकर अकालग्रस्त क्षेत्रों में काम किया। उनका विचार था कि अकालग्रस्त गांवों के निवासियों की आर्थिक-सामाजिक हालत के सर्वेक्षण के आधार पर राहतकार्य होना चाहिए। सामाजिक विज्ञानों में प्रचलित किसी भी सर्वेक्षण-पद्धति का उन्हें ज्ञान नहीं था। फिर भी अपने ढंग से उन्होंने सर्वेक्षण किया। इसी दौरान वे कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों के लिए गऊबगान वर्किंग मेंस इंस्टीट्यूट नामक संस्था द्वारा चलाये जा रहे प्रौढ़ शिक्षा-कार्यक्रम से भी संबंधित रहे। उस संस्था से प्रोफेसर सत्यन बोस भी अपने अध्ययन काल के प्रारंभिक दिनों में जुड़े हुए थे। निर्मल कुमार बोस 1918 से द्वितीय सेंट जान एम्बुलेंस ब्रिगेड, कलकत्ता के सदस्य बने और जीवनपर्यंत इसके सदस्य रहे।

अगले वर्ष उन्होंने कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कालेज में भूविज्ञान आनर्स के पाठ्यक्रम में प्रवेश लिया। अन्य सहायक विषय थे— रसायनशास्त्र और गणित। भूविज्ञान के अध्ययन में उन्हें फील्डवर्क विशेष रूप से पसंद था। उसके साथ-साथ शैलविज्ञान (Petrology) और जीवाश्म विज्ञान (Palaeontology) के अध्ययन की ओर भी वे आकर्षित हुए। भूविज्ञान विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर हेमचंद्र दास गुप्ता से वह बहुत प्रभावित थे और उन्हें एक आदर्श शिक्षक मानते थे। उनकी समग्रता, समय-निष्ठा, विषय पर गहरी पकड़ तथा शिक्षा के प्रति समर्पण ने बोस पर गहरी छाप छोड़ी थी। प्रेसीडेंसी कालेज में बोस को एक होनहार विद्यार्थी माना जाता था। वे अपने महाविद्यालय की क्रिकेट टीम के कप्तान थे। उन्होंने सन 1921 में बी.एससी. आनर्स की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की और एम.एससी. भूविज्ञान में प्रेसीडेंसी कालेज में प्रवेश लिया।

उन्हीं दिनों महात्मा गांधी द्वारा असहयोग आंदोलन आरंभ किया गया। कलकत्ता का पूरा शिक्षा जगत उससे प्रभावित हुआ और अधिकतर विद्यार्थी उससे जुड़ गये। इस दौरान चितरंजनदास का प्रेसीडेंसी कालेज में आगमन हुआ। बेकर प्रयोगशाला में उन्होंने एक ओजस्वी भाषण में विद्यार्थियों से अपनी कक्षाओं का बहिष्कार करने और आंदोलन में सम्मिलित होने को कहा। सभी विद्यार्थी उस भाषण से प्रभावित हुए और उन्होंने एक साथ कक्षाएं छोड़ दीं। निर्मल के विशेष मित्र सौमेंद्रनाथ टैगोर ने कालेज छोड़ने में पहल की। परंतु निर्मल ने कालेज में बने रहने का निर्णय लिया और प्रयोगशाला में अपना कार्य जारी रखा। सर आशुतोष मुखर्जी ने विद्यार्थियों को समझाने का प्रयत्न किया कि उनकी राष्ट्रीय भावना प्रशंसनीय है, लेकिन उन्हें विश्वविद्यालय की प्रगति तथा आधुनिक शिक्षा के प्रसार को भी एक राष्ट्रीय प्रयास मानते हुए उसमें पूरा सहयोग देना चाहिए।

1917 से 1921 की अवधि में निर्मल के मानसिक संघर्ष और उनकी आकांक्षाओं की जानकारी कुछ टिप्पणियों में मिलती है, जो निर्मल ने नियमित रूप से उन दिनों अपने बारे में लिखी थी। 24 फरवरी, 1921 को यह समस्त टिप्पणियां, जिनका शीर्षक था— 'अंतरात्मा के स्पष्ट विचार' उन्होंने अपने करीबी मित्र गोलक मित्रा को भेंट कीं। उनमें

एक ऐसे युवक की चेष्टाओं का आभास मिलता है जो अपने तन और मन को प्रशिक्षित और संयत कर राष्ट्रीय स्वाधीनता और कल्याण के लिए क्रियाशील होना चाहता है और एक नयी सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में भागीदार बनना चाहता है:

1917: "दो प्रकार की पहाड़ियां होती हैं—पथरीली और रेतीली। जो पथरीली पहाड़ी पर रहे हैं, उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं। कुछ रेत के टीले पहाड़ियों से ऊंचे होते हैं। परंतु बाद में यह ऊंचे टीले ढह जाते हैं। जो लोग अपना जीवन ईमानदारी पर आधारित करते हैं, उनको पहाड़ी पर बने मकान की तरह एक दृढ़ आधार मिलता है। पर जिन लोगों की इमारत बेईमानी पर खड़ी है, वह रेत के ढेर पर बैठे हैं।"

निर्मल की इच्छा एक मजबूत चट्टान जैसा जीवन बनाने की थी। उनके विवरण में हमें उनके आंतरिक संघर्ष का आभास मिलता है। कई स्थानों पर उनकी टिप्पणियों में विश्वशक्ति के साथ सहभागिता की तीव्र लालसा अभिव्यक्त हुई है :

"हम सब ब्रह्मांड के अंश हैं। हम सबमें उसके तत्व पाये जाते हैं। अपने में निहित 'विश्वशक्ति' की पूर्णता प्राप्त करने की हम सब को चेष्टा करनी चाहिए। पानी की बूंद जैसे बनें। गर्मी में पानी की बूंदें भाप बन जाती हैं। वही बूदें वर्षा बनकर सभी के कल्याणार्थ बरसती हैं। उसी प्रकार ज्ञान है। यह वह उष्मा है जो तुम में छिपी विश्वशक्ति को भाप बनाकर उस सामूहिक ज्ञान भंडार का अंग बना देगा जो सबके लिए कल्याणकारी होगा। जिस प्रकार भाप अदृश्य होती है, उसी प्रकार तुम्हारी कल्याणकारी गतिविधियां भी गुप्त होनी चाहिए। दूसरे को उनके बारे में कोई सूचना नहीं मिलनी चाहिए... अपने मानसिक संतुलन को सदैव बनाये रखना चाहिए, ताकि सभी खतरों के बावजूद वह हमें सीधा मार्ग दिखा सके..."

"तुम एक तपस्वी हो... तुम अपने पथ को अपनी ही रोशनी से प्रकाशित करते हो..."

आगे चलकर निर्मल ने इस बात पर बल दिया कि एक वैज्ञानिक होने के नाते वे ईश्वर या किसी भी दैवीय शक्ति के अस्तित्व से संबंधित नहीं हैं, परंतु उनके विवरणों में हमें ईश्वर में विश्वास का स्पष्ट वर्णन मिलता है तथा वे ईश्वर को ब्रह्मांडीय शक्ति का संपूर्ण केंद्र मानते हैं। 1917 में उन्होंने लिखा है :

"तुम अपने मन को ईश्वर के प्रति सदैव सचेत रखो। इस आनंदमय विश्व को और आनंदमय बनाओ। अपने हर काम में अपने मन के आत्म को ईश्वर में लगाओ। उसमें और तुम में कोई अंतर नहीं है...तुम अपने शरीर और आत्मा के प्रति ईमानदार रहो। यही तुम्हारा कर्तव्य है। जो भी तुम्हारे पास हो—कोई भी अन्य किसी का गुरु नहीं होता, केवल वह अनंत गुरु ही सबका गुरु है...हम सब उसी अनंतता के प्रति अग्रसर हैं।"

इन टिप्पणियों में हमें अद्वैत वेदांत, विकास के जैविक सिद्धांत के प्रति आकर्षण की झलक दिखाई देती है, साथ ही महात्मा बुद्ध की महिमा और टैगोर के विचारों का

भी प्रभाव दिखाई देता है। 1920 में उन्होंने इब्सन के नाटक 'दि डाल्स हाउस' (The Doll's House) पर विचार व्यक्त किये हैं :

"समाज के प्रतिमान चिर स्थायी और स्थिर नहीं होते। हमें उन सिद्धांतों को वास्तव में मानना चाहिए जो मनुष्य को स्वतंत्र बनाते हैं, उसकी वैयक्तिक स्वायत्तता को स्वीकारते हैं। व्यक्ति ने समाज का निर्माण किया है, समाज कोई आकाश से नहीं टपका। मैं नोरा के द्वारा खुद के व्यक्तित्व को समर्थ, स्वतंत्र और सम्पूर्ण बनाने के प्रयत्नों का सम्मान करता हूं... अगर सामाजिक नियम जीवन की आंतरिक स्वतंत्रता को प्रतिबंधित करने का प्रयत्न करते हैं तो उन्हें परिवर्तित करना और तोड़ना ही पड़ेगा। एक निश्चित रास्ते पर चलने से क्या लाभ है, अगर ऐसा करने से जीवन का प्रत्येक स्पंदन खत्म होने का डर हो?"

असहयोग आंदोलन के प्रति बोस की प्रतिक्रिया के बारे में उनकी डायरी से मालूम होता है:

"अपने राष्ट्रीय जीवन में हमें एक नये युग के आरंभ का भास होता है। हर ओर असहयोग आंदोलन कार्यान्वित किया जा रहा है। विद्यार्थी अपने स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालयों को छोड़ रहे हैं। इन चेष्टाओं में भावुकता और तर्क की समवर्ती तरंग निहित हैं... मुझे नहीं मालूम कि स्कूल और कालेज छोड़ देने से हमें एक ही वर्ष में स्वराज्य प्राप्त होगा या नहीं, परंतु मुझे ऐसा लगता है कि यह आंदोलन हमारी राष्ट्रीय चेतना और जीवन को जागृत करेगा और हममें से बहुत-से सचेत हो उठेंगे और सोचने लगेंगे..."

"मनुष्य हमेशा से दूसरों को अपने बराबर नहीं मानता रहा। इसी कारण विश्व में इतना संघर्ष और दुख है। जब भी मनुष्य ने समानता के सिद्धान्त का सामाजिक स्तर पर पालन नहीं किया, तभी परिवार, समाज अथवा राज्य में टकराव हुआ है। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए मनुष्य ने सदा संघर्ष किया है... आज विश्व-भर में विद्रोह की प्रवृत्ति है। रूस में बोल्शेविज़्म, आयरलैंड में अराजकतावाद और हमारे यहां असहयोग आंदोलन-- यह सब कुछ असमानता के विरुद्ध बगावत की अभिव्यक्ति है। शायद सभी राष्ट्र अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर लेंगे, परंतु सामाजिक क्षेत्र में अभी विद्रोह की भावना का पूर्ण रूप से उदय नहीं हुआ है और इसकी अत्यंत आवश्यकता है।"

1921 में युवा निर्मल का झुकाव गांधी के प्रति होता जा रहा था। उनको यकीन होता जा रहा था कि राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ साथ सामाजिक स्वतंत्रता स्थापित होनी चाहिए और अंततः मनुष्य की स्वाधीनता का आधार राष्ट्रीय सीमाओं को लांघकर मानवीय मातृत्व की स्वीकृति है। परंतु उनका विचार था कि इस समय उन्हें प्राथमिकता के आधार पर असहयोग आंदोलन में शरीक होना चाहिए।

भूवैज्ञानिक प्रयोगशाला में बोस ने अपने प्रयोग को पूरा किया। लेकिन सर आशुतोष मुखर्जी के प्रति अपनी श्रद्धा के बावजूद उन्होंने राजकीय महाविद्यालय में शिक्षा जारी

न रखने का निर्णय लिया और उसे छोड़ दिया।

सी.एफ.एंड्रयूस के सुझाव पर बोस और उनके दो मित्रों ने ट्रिनिडाड, फीज़ी, मारिशस और दक्षिण अफ्रीका से 1921 में लौटे अनुबंधित भारतीय मजदूरों के लिए सैकेंड संट जॉन्स एम्बूलैंस ब्रिगेड की ओर से शिविर की स्थापना की। पांच महीने तक वह उस शिविर के एकमात्र प्रभारी रहे। उनकी सामाजिक तथ्यों का गंभीर सर्वेक्षण करने की उमंग को अवसर मिला और उन्होंने 450 परिवारों के 1050 सदस्यों की सामाजिक पृष्ठभूमि की विस्तृत संगणना कर डाली। भारतीय ग्रामीण समाज इंडीज़ से लौटे इन अनुबंधित श्रमिकों के आत्मसातीकरण और उनके पुनर्स्थापन के मार्ग में किस प्रकार बाधक हो रहा या, इसके संबंध में हमें इस सर्वेक्षण से प्रचुर सूचनाएं मिलती हैं।

कलकत्ता छोड़ कर बोस पुरी चले आये, जहां उनकी मां निवास करती थीं। अपने ढंग से उन्होंने अध्ययन को जारी रखा और असहयोग आंदोलन की गतिविधियों से भी जुड़े रहे। उन्होंने देखा कि गांधी ने एक विशिष्ट भूमिका निभाते हुए उस आंदोलन को एक निश्चित दिशा दी है। इसी दौरान पुरी के मंदिरों की वास्तुकला और मूर्तिकला में भी उनकी गहरी रुचि पैदा हुई और तत्पश्चात कोणार्क और भुवनेश्वर के मंदिरों में भी। उन्हें केवल मूर्तियों और मंदिरों की वास्तुकला की विशिष्टता और सौंदर्य ने ही प्रभावित नहीं किया, बल्कि एक वैज्ञानिक होने के नाते वे वास्तुकला के मूल सिद्धांतों की खोज में लग गये। अपने इस अध्ययन के दौरान उनकी मुलाकात शिल्पियों के एक समूह से हुई, जो परंपरागत रूप से पत्थर तराशने और मंदिर निर्माण का कार्य करते थे। उनमें से शिल्पकार राम महाराणा ने उड़ीसा के मंदिरों की वास्तुकला के मूल सिद्धांत के बारे में बोस को बहुत सी सूचनाएं दीं। उन्होंने कुछ पुरानी पांडुलिपियां भी खोज निकालीं, जिनको उन्होंने टिप्पणी सहित एक पुस्तक (उड़ीसा वास्तुकला के सिद्धांत) के रूप में 1932 में अनुवादित कर प्रकाशित किया। कोणार्क और अन्य मंदिरों पर उन्होंने बांग्ला भाषा में कई लेख लिखे।

निर्मल कुमार बोस एक जन्मजात शिक्षक थे, उनकी वाणी प्रभावी थी। उन्होंने प्रभावशाली ढंग से लेखन-कार्य किया, परंतु उनका वास्तविक प्रभाव एक वक्ता और विवेचक के रूप में था। उनका विचार था कि कलकत्ता और बंगाल के अन्य स्थानों से पुरी आने वाले लोगों को उड़ीसा में मंदिरों के संबंध में व्यापक सूचना होनी चाहिए। इसलिए उन्होने पर्यटकों को उड़ीसा के मंदिरों पर भाषण देना आरंभ किया। ऐसे ही एक भाषण में आशुतोष मुखर्जी भी उपस्थित थे। बोस के प्रस्तुतीकरण कौशल और स्पष्टता से वे बहुत प्रभावित हुए। उनसे बातचीत करने पर जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि 1921 में प्रेसीडेंसी कालेज बोस ने महात्मा गांधी के आह्वान पर छोड़ा है, तो उन्होंने यह प्रयत्न किया कि वे विश्वविद्यालय में पुनः अध्ययन आरंभ करें। निर्मल ने उन्हें बताया कि वे राजकीय महाविद्यालय में वापस न जाने का निर्णय कर चुके हैं। सर आशुतोष उन दिनों कलकत्ता विश्वविद्यालय में मानव विज्ञान-विभाग (Anthropology) की

स्थापना कर रहे थे। सर आशुतोष ने उनको समझाया कि उन्होंने अभी तक भूविज्ञान और मंदिर-वास्तुकला में जो ज्ञान अर्जित किया है, उसके आधार पर मानव विज्ञान जैसा विषय उनके लिए एक चुनौती होगा, और यह भी कहा कि कलकत्ता विश्वविद्यालय को कभी भी शासकीय संस्था नहीं माना गया है।

3

एक मानव वैज्ञानिक का निर्माण

सर आशुतोष के समझाने पर निर्मल बोस ने 1923 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के मानव विज्ञान विभाग में प्रवेश लिया। भूविज्ञान का उनका अध्ययन और क्षेत्र-सर्वेक्षण के प्रति उनका झुकाव— यह उनकी खास विशेषताएं थीं। उन्होंने सामाजिक सर्वेक्षण में स्व प्रशिक्षण भी किया था। जनोत्थान के प्रति उनकी वचनबद्धता, राष्ट्रवादी प्रवृत्ति और भारतीय संस्कृति के लोक एवं शास्त्रीय पहलुओं पर उनकी पकड़ से नये विषय के अध्ययन में उन्हें पर्याप्त सहायता मिली। पुरी में नुलिया मछेरों की जीवनशैली का उन्होंने अध्ययन किया था और रांची में मुंडा आदिवासियों का। विभाग के शिक्षकों को उनमें एक असाधारण शिष्य मिला था, जिसकी तीव्र बुद्धि और सूक्ष्म दृष्टि से वे बहुत प्रभावित थे। 1925 में उन्होंने एम.एससी. परीक्षा उत्तीर्ण की और सभी विषयों में पूरे विश्वविद्यालय में प्रथम रहे। एम.एससी. में उन्होंने 'भारत में बसंतोत्सव' विषय पर जो शोधपत्र प्रस्तुत किया था, वह सांस्कृतिक विशेषताओं के प्रसार पर आज भी एक महत्वपूर्ण शोधपत्र है।

एम.एससी. में बोस को सांस्कृतिक मनोविज्ञान में क्षेत्रीय अध्ययन का औपचारिक प्रशिक्षण प्राप्त हुआ। उन्होंने यह प्रशिक्षण सराय कैला के 'हो' कबीले का अध्ययन करते हुए प्राप्त किया। डिग्री प्राप्त करने के बाद उनका विचार हुआ कि उड़ीसा के गढ़जात पहाड़ी क्षेत्र में बसे आदिवासियों की जीवनशैली का अध्ययन किया जाय।

कलकत्ता विश्वविद्यालय से उन्हें मानव विज्ञान में शोध-शिक्षावृत्ति प्रदान की गई, जिसके आधार पर वे पाल लहेरा के भीतरी वनक्षेत्र में जुआंग कबीले के अध्ययन के लिए गये। जुआंग कबीले के लोग मुंडा भाषा परिवार में से एक उपभाषा बोलते हैं, जो कि आस्ट्रिक (Austric) भाषा में से एक है। यहां जाने से पहले बोस ने रांची में मुंडा आदिवासियों से मुंडारी भाषा सीखी थी। परंतु जुआंग मुंडा भाषा के उपभाषायी परिवार की एक विशेष भाषा बोलते थे। जुआंग आदिवासी बाहरवालों से उड़िया भाषा के एक रूप को व्यवहार में लाते थे। उन्होंने जुआंग कबीले से तुरंत घनिष्ठता स्थापित कर ली और उनकी भौतिक और आर्थिक जीवन-पद्धति के संबंध में लिखना आरंभ कर दिया। उन्हें अनुभव हुआ कि उड़िया भाषा बोलने के कारण उनमें और आदिवासियों

में एक दूरी-सी बनी हुई है, इसलिए उन्होंने आदिवासियों की भाषा सीखने का निर्णय लिया। इसके लिए उन्होंने आदिवासियों से अनुरोध किया कि वे उन्हें वह भाषा सीखने में सहायता दें। आदिवासियों को इस बात पर विस्मय हुआ कि एक बाबू उनकी भाषा सीखना चाहता है। उनके अपढ़ शिक्षक मणी और गांव के मुखिया ने इस प्रयोजन से पूजा की, ताकि बोस उस भाषा को शीघ्र सीख पायें। उन्होंने स्नान किया, अग्नि प्रज्वलित की, साल के पत्ते से एक दीया बनाया और सूर्य की ओर मुंह करके यह प्रार्थना की : "नीचे धरती की देवी सत्य है, आकाश में धर्म देवता भी सत्य है। हम प्रार्थना करते हैं कि बाबू को हमारी भाषा की शीघ्र प्राप्ति हो।"[1]

इसके बाद सभी स्थानीय देवताओं को चावल के लड्डू अर्पित किये गये, ताकि वे बाबू को भाषा सीखने में सहायता दे सकें।

बोस ने इस सबको बड़े ध्यान से देखा और निष्कर्ष निकाला कि जुआंग जाति ने कई देवी-देवताओं और रीति-रिवाजों को ग्रहण किया था। उस जाति के अनोखे रीति-रिवाजों और नृत्य-गायन की सामूहिक मनोरंजन-क्षमता से वे बहुत प्रभावित तो हुए, परंतु उनका मन प्रसन्न नहीं हुआ, क्योंकि उनमें से अधिकतर लोग कुपोषण तथा कई बीमारियों से ग्रस्त थे। शिशुओं की मृत्यु-दर बहुत ऊंची थी। बोस का मानना था कि मानव वैज्ञानिकों को आदिवासियों को केवल अनोखी, सुंदर और रुचिकर परंपराओं का पात्र ही नहीं मानना चाहिए, बल्कि उनकी गरीबी और अल्पपोषिता के कारणों का गहराई से अध्ययन करने की आवश्यकता है। अपने एक बांग्ला लेख 'विद्या के व्यवहार' में उन्होंने टिप्पणी की—

"...वह (जुआंग) लोग मलेरिया से पीड़ित हैं। बच्चों की तिल्ली बढ़ी हुई है। पुरुष दुबले और नाटे हैं। परंतु गरीबी के मारे वह सब दिन-भर जंगल में खाने और अन्य वस्तुओं की तलाश में बुखार की हालत में भी भटकते रहते हैं। वे सारा दिन काम करते हैं, देशी शराब पीते हैं और तब तक अपनी बीमारी की अवहेलना करते हैं जब तक वे पूरी तरह से असमर्थ नहीं हो जाते। धीरे-धीरे मेरे मन में एक प्रश्न उठा। मैं जुआंग जाति का वैज्ञानिक अध्ययन करने उनके बीच आया हूं। उनका सांस्कृतिक स्तर आर्यपूर्व—कोल और संथाल आदिवासियों के तुलनीय है। मुझे आशा थी कि भारतीय संस्कृति के आर्यपूर्व और पुरातन स्वरुप का ज्ञान मुझे उनकी जीवनशैली के अध्ययन से मिल सकता है। मैं दो वक्त खाना खाता हूं। अगर थका हुआ होता हूं तो अपनी साइकल पर सवार होकर चार मील दूर तक उड़िया गांव में जाकर जान-पहचान के लोगों के बीच निश्चिंतता से बतियाता हूं। मेरे पास पढ़ने के लिए मेरी पुस्तकें हैं, परंतु समस्या यह है कि क्या मैं शोध के आधार पर उनकी हालत को बेहतर नहीं बना सकता? अभी तक मैं उनका अध्ययन इस प्रकार करता रहा हूं, जैसे कोई वनस्पतिशास्त्री पौधे की शाखाओं को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर, छीलकर माईक्रोस्कोप के नीचे रखकर देखता है। मुझे स्वीकार करना होगा कि मैंने उन्हें अपनी

तरह का मनुष्य नहीं माना था। अगर मेरे सगे संबंधी इतनी निर्धनता और बीमारी में होते अथवा अज्ञान के कारण कृषि के नये तरीकों का पूरा लाभ उठाने में असमर्थ होते, तो मैं कभी भी इस प्रकार सिरों को मापने, स्थानीय पूजा-पद्धति या स्त्रियों की उपासना अथवा मृत्यु-संबंधी रीति-रिवाजों के बारे में शोधपत्र लिखने के उद्देश्य से ज्ञानार्जन में न लगा रहता। मैं अपने ज्ञान का संपूर्ण प्रयोग उनकी सहायता के लिए करता। उन परिस्थितियों में मेरा कर्तव्य क्या होना चाहिए? इस प्रश्न से मेरे मन में हलचल मच गई। मुझे दुख के साथ कहना पड़ता है कि मैं समस्या का कोई उचित समाधान नहीं कर सका हूं।''[2]

दुर्भाग्य से जुआंग क्षेत्र बोस को तीव्र और उग्र मलेरिया के कारण छोड़ना पड़ा। बाद में ब्रिटिश सरकार के कहने पर स्थानीय रियासतों ने क्योंझार और निकटवर्ती गढ़जात प्रदेश में प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया।

जुआंग क्षेत्र से वे बृहत् सामाजिक जातीय व्यवस्था के अंतर्गत आदिवासियों की स्थिति की व्यापक जानकारी लेकर लौटे थे। इस अनुभव के आधार पर उन्होंने 1941 में `The Hindu Method of Tribal Absorption' (जन जातीय समावेश की हिन्दू पद्धति) शीर्षक से अपना सारगर्भित शोधलेख लिखा। इसी अनुभव के आधार पर उन्होंने बाद में आदिवासी क्षेत्र में और खोजबीन की।

भारतीय सभ्यता के सामान्य-निरंतर-पारस्परिक क्रिया-स्थल के शास्त्रीय, देहाती कबीलाई स्वरूप को समझने के लिए मूल आधार उन्हें इन्हीं उड़िया मंदिरों, शिल्पियों, नुलिया मछेरों और जुआंग आदिवासियों से प्राप्त हुआ था। उनका बाकी जीवन भारतीय संस्कृति के इस आयाम की संरचना तथा गतिशीलता को समझने का एक निरंतर चलनेवाला प्रयास था। मध्यकालीन युग के अंतिम चरण में सभ्यता के पतन और फिर उपनिवेशवाद के प्रभाववश पैदा हुए विघटन के बाद पुनरुद्धार के कौन-से साधन हो सकते हैं, यह भी उनके अध्ययन का विषय रहा।

बोस ने मानव विज्ञान संबंधी अपने विचारों को एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया, जिसका शीर्षक था 'सांस्कृतिक मानव विज्ञान'। यह पुस्तक 1929 में प्रकाशित हुई। हालांकि भारतीय विद्वानों ने इस पुस्तक पर विशेष ध्यान नहीं दिया, परंतु अमेरिका के मानव वैज्ञानिक ए.एल. क्रोबर उसकी प्रस्तुति की मौलिकता से आकर्षित हुए। एक अपरिचित भारतीय लेखक द्वारा लिखी गई एक छोटी-सी पुस्तक की समीक्षा करते हुए उन्होंने लिखा—

''150 पृष्ठों की इस पुस्तिका का उद्देश्य सामान्य मानव शास्त्रीय अवधारणाओं से अंग्रेजी जाननेवाले भारतीयों को परिचित करवाना है। इस के विभिन्न अध्यायों में जिन विषयों की विवेचना की गई है, वे इस प्रकार हैं—संस्कृति क्या है, संस्कृति का सामान्य स्वरूप, सांस्कृतिक विशेषता की संरचना, विशेषता-विवरण, संपर्क के कारण परिवर्तन, विकास और उन्नति। ऐसा लगता है जैसे यह विस्सलर से प्रभावित है, परंतु

वास्तव में यह प्रयत्न स्वतंत्र है, जिसमें मूल तथ्यों को सीधे-साधे ढंग से भारतीय जीवन के उदाहरणों से प्रतिपादित किया गया है।[3]

कई वर्षों बाद, 1950 में प्रोफेसर ए.एल. क्रोबर तथा क्लाईड क्लकहान ने निर्मल बोस से उनकी इस पुस्तक के कुछ अंशों को चुना। अपनी पुस्तक 'Culture: a critical review of concepts and definitions' (1952) में उद्धृत करने की स्वीकृति मांगी और दस उदाहरण दिये। 'Cultural Anthropology' पुस्तक को ध्यान से पढ़ने पर युवक निर्मल बोस के विचारों की मौलिकता तथा स्पष्टवादिता साफ दिखती है। वे अपनी इस पुस्तक में समकालीन पृष्ठभूमि को प्रस्तुत करते हुए पुरानी व्यवस्था के टूट जाने और उसके पुनर्निर्माण की समस्या पर विचार करते हैं। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद सभ्यता का क्या रूप है, उस पर वे लिखते हैं—

"हाल ही में हुए युद्ध द्वारा जो व्यापक विघटन हुआ है, उसके बाद अनेक लोग समझते हैं कि सभ्यता को एक नये आधार पर पुनः स्थापित करने का समय आ गया है... जो सामाजिक व्यवस्था हमने विरासत में प्राप्त की थी, वह जीवन की कुछ विशिष्ट परिस्थितियों के आधार पर बनाई हुई थी; जो अब नष्ट हो चुकी है। हमें अपनी सांस्कृतिक विरासत को आधुनिक आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुकूल बनाने का एक दृढ़ प्रयत्न करना चाहिए। कुछ विचारक सोचते हैं कि पुनर्निर्माण के इस कार्य में समाजशास्त्र, मानवजाति की व्यापक सेवा कर सकते हैं।"[4]

बोस जानते थे कि समाजशास्त्रों की भूमिका इस क्षेत्र में सीमित ही हो सकती है। लोगों के मन में आशा की नयी किरण पैदा करने का काम लेखकों, विचारकों, कलाकारों और सामाजिक नेताओं का है—

"समाजशास्त्र मनुष्य के जीवन में आशा की किरण पैदा नहीं कर सकते और जहां विश्वास नहीं, वहां विश्वास भी उत्पन्न नहीं कर सकते और मानवीय पुनर्गठन में यही तथ्य सबसे शक्तिशाली तथ्य होते हैं। इस प्रकार समाजशास्त्र का मूल्य सीमित है, परंतु फिर भी महत्वपूर्ण है। जैसे कि चिकित्सक के लिए शरीर-रचना तथा शरीर-विज्ञान जानना जरूरी है, जिन्हें जाने बिना वह रोगी के शरीर की बीमारी के बारे में समझ नहीं पायेगा।"....

"इस लेख में सैद्धांतिक रूप से प्रस्तुत की गई धारणा यह है कि ऐतिहासिक विकास को निर्धारित करने वाला मुख्य तथ्य मानवीय स्वभाव है। संस्कृति ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक अथवा रूपात्मक संस्कृति के पहलू मूल रूप में एक ऐसे नाटक की पृष्ठभूमि है, जो कि वस्तुतः अर्थ तथा निर्देश में मानवीय है..."[5]

इसमें आश्चर्य नहीं कि मानवशास्त्री निर्मल बोस मानवीय अवस्था को गहराई से समझने के लिए टालस्टाय, गांधी, मार्क्स, क्रोपाटिकन, हक्सले, टैगोर, नंदलाल, जैमिनी राय, उड़ीसा के मंदिरों और शिल्पियों के सहारे अंत:दृष्टि प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील थे।

इस पुस्तक की एक विशेपता यह है कि बोस ने संस्कृत शब्दों, जैसे तत्व, रजस, तमस, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का मानवीय व्यवहार और संस्कृति की सामान्य कोटियों के रूप में कल्पनाशील प्रयोग किया है। उन्होंने वस्तु, क्रिया, संहति, तत्व जैसी कोटियों का संस्कृति की विशेपता के वर्णन में प्रयोग किया है। बोस उन्हें और वर्गीकृत करते हुए विचारमूलक और विश्वासमूलक दो श्रेणियों में विभाजित करते हैं।

जे.बी.एस. हाल्डेन ने इन कोटियों में से कुछ का प्रयोग संस्कृति के अध्ययन की कुछ प्रचलित कोटियों के रूप में किया है। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध हक्सले-स्मृति भापणमाला में 'पशु से मानव तक' के तर्क को मानव विज्ञान के लिए उसकी वैधता का एक परीक्षण स्वीकार किया। यह भापण उन्होंने 1957 में रायल एंथ्रोपोलाजिकल सोसायटी आफ ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड (Royal Anthropological society of Great Britain and Ireland) के सम्मुख प्रस्तुत किया।[6]

यह उल्लेखनीय है कि रूथ, बेनेडिक्ट ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Patterns of Culture' (1934) में संस्कृति को विचाररचित संघटना के रूप में विश्लेपित किया है। बोस ने इससे पांच वर्ष पूर्व संस्कृति के समाकलित विचारमूलक आयाम की बात की है और उसे संस्कृति की आत्मा (Soul of Culture) स्वीकार किया है—

"संस्कृति के बाहरी ढांचे में भीतरी विश्वासों और भावनाओं का एक समूह होता है, जो कि संस्कृति की विशेप अभिव्यक्ति का आधार होता है। वह किसी निश्चित विशिप्टता का अंश तो नहीं होता, परंतु कई विभिन्न विशेपताओं में अंतर्निहित होता है—और किसी भी संस्कृति को उसका विशेप रूप प्रदान करता है विश्वासों और भावनाओं का यह समूह जीवन-दर्शन से उत्पन्न होता है और स्वयं किसी भी विशेप युग की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से प्रमाणित होता है।"[7]

4

सामाजिक पुनर्निर्माण के क्षेत्र में प्रयोग

निर्मल बोस 1930 में विश्वविद्यालय त्यागकर महात्मा गांधी के नमक सत्याग्रह में सम्मिलित हो गये। अपने कुछ मित्रों सहित उन्होंने बोलपुर नगर की एक गरीब बस्ती में एक खादी संघ स्थापित किया। यह बस्ती रवींद्रनाथ ठाकुर के शांतिनिकेतन-विश्वभारती से केवल दो किलोमीटर की दूरी पर थी। यहां रहनेवाले लोग मोची, हाडी, तथा बाऊरी अछूत जातियों के थे। बोस ने वहां एक रात्रिकालीन प्रौढ़ केंद्र (शिक्षागार) भी स्थापित किया।

शिक्षागार के एक पूर्व कार्यकर्ता खुदीराम चौधरी ने निर्मल बोस के संबंध में लिखा है—

निर्मल दा ने हरिजनों के लिए स्थापित प्रौढ़ शिक्षा केंद्र का उत्तरदायित्व मुझे सौंप दिया। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं स्वयं सोचूं कि मैं वह काम कैसे करूंगा। जब हमने उस समस्या पर विचार किया तो उन्होंने धैर्य से मेरी बात सुनी और सुझाव दिये। बस उनकी उपस्थिति ही हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत थी। उनका अधिकतर समय पढ़ने-लिखने में बीतता था। उनका खान-पान सादा था, परंतु स्वास्थ्य अच्छा उन्होंने हमें एक व्यायामशाला स्थापित करने में सहायता दी। भद्रलोक युवागण भी इस व्यायामशाला में हरिजनों के साथ सम्मिलित हुए। निर्मल दा एक बार गोपाल हरिजन को, जो कि मोची था, अपनी साइकिल पर बिठाकर बोलपुर से लगभग पंद्रह मील दूर किन्नहार ले गये। उन्होंने उसे चमड़े का अपना उद्योग लगाने के लिए कुछ पैसे भी दिये।

हमारे गांधीवादी शिक्षागार में कभी-कभी कुछ क्रांतिकारी मित्र भी आ जाते थे। कुछ कांग्रेसी कार्यकर्ताओं ने इसका विरोध किया। निर्मल दा ने उनसे कहा—अगर एक ईमानदार गांधीवादी कार्यकर्ता खुदीराम उन्हें निष्कपट मानता है तो मुझे विश्वास है कि अपनी बुद्धि के अनुसार वह इनसे निबट लेगा।

निर्मल दा आदतन बहुत साफ-सुथरे थे। वे अपना पूरा काम स्वयं करते थे। सूत बहुत कम कातते थे, लेकिन उनका काता हुआ सूत उत्कृष्ट कोटि का होता था ''

उनके मन में नेता बनने की लालसा कभी नहीं रही। बाद में, कुछ कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने उन्हें एम.एल.ए. अथवा एम.पी. का चुनाव लड़ने के लिए बहुत कहा,

परंतु उन्होंने उस मार्ग पर जाने से इंकार किया। हम में से बहुत यह अनुभव करते हैं कि अगर हमने उनके आदर्शों को स्वीकार किया होता तो भारत विश्व का एक महान देश बन गया होता।[8]

खुदीराम के इन भावपूर्ण विचारों से स्पष्ट है कि निर्मल बाबू अपने स्थानीय साथियों के लिए प्रेरणा के स्रोत रहे। उन्हें यह एहसास था कि वे एक भरोसेमंद मित्र और शिक्षक हैं, परंतु वह सब यह भी जानते थे कि उनके सर्जनात्मक जीवन का एक दूरस्थ आंतरिक जगत भी है।

1931 में बोस को नमक सत्याग्रह में भाग लेने पर गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें 'सी' श्रेणी में पहले सूरी जेल में और उसके बाद दमदम की विशेष जेल में रखा गया। उनके साथ एक नवयुवक भी बंदी था, जिसका नाम डी.एम. सेन था। बाद में वह सेना में बिग्रेडियर के पद पर विधि अधिकारी रहा। उसके बाद नागालैंड और नेफा सरकारों का विधि परामर्शदाता और असम हाईकोर्ट का जज रहा। उसने उन दिनों के बारे में लिखा है—

''निर्मल बाबू—जिन्हें हम निर्मल दा बुलाते थे—की विशिष्टता से हम सब बहुत प्रभावित थे। 'सी' श्रेणी का तनावपूर्ण वातावरण उन्हें लेशमात्र भी विचलित नहीं करता था। वे हमेशा उड़ीसा मंदिरों के बारे में पढ़ने-लिखने में तल्लीन रहते थे और उनके व्यवहार में रत्ती-भर भी परेशानी नहीं झलकती थी। उनकी उपस्थिति से हममें विश्वास पैदा होता था, हमें प्रतीत होता था कि हम एक अच्छे स्थान में हैं, अच्छी संगत में हैं... हमने उन दिनों अक्सर यह देखा कि जब राजनीतिक बंदियों से उनके संबंधी निर्धारित दिनों पर मिलने आते थे तो वह अपना धैर्य खो देते थे। कुछ कैदियों ने अच्छे आचरण का वचन देकर छूटने का प्रयास भी किया। हमारे साथी विश्वासघात जैसी इन घटनाओं से उत्तेजित हो जाते ते और कुछेक को तो साथियों ने मिलकर पीटा था। निर्मल बाबू को यह तरीका गांधीवादी व्यवहार के विपरीत लगा। उनका विश्वास था कि हर व्यक्ति को अपनी राय और इच्छा की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होनी चाहिए। उन्होंने कहा कि अगर कोई वचन देना चाहता है तो उसे इसका अधिकार होना चाहिए। हमने उनका सुझाव मान लिया... निर्मल दा का कांतिमय संतुलित व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली था।''[9]

निर्मल बाबू दमदम जेल से 1932 में रिहा कर दिये गये। जेल में उन्होंने अपना कुछ समय गांधी पर लिखने और मनन करने में बिताया। 1934 में नवजीवन ट्रस्ट द्वारा उनकी पुस्तक 'Selections from Gandhi' प्रकाशित की गई। अभी तक उन्हें गांधी से मिलने का अवसर नहीं मिला था। ऐसा मौका उन्हें 1934 में मिला, जब वह बम्बई से कलकत्ता अपने मित्र कृष्ण कृपलानी के साथ लौट रहे थे। उन्होंने वर्धा में रुककर सेवाग्राम में गांधीजी से मिलने का निर्णय लिया। खान अब्दुल गफ्फार खान ने, जो निर्मल बोस को खादी संघ, बोलपुर में पहले मिल चुके थे, गांधीजी के साथ 9 और 10 नवंबर को भेंट की व्यवस्था की।

बोस ने महात्मा गांधी से निम्नलिखित प्रश्न पूछे—

1. क्या सूत कातने को केवल एक मानवीय कार्यक्रम के रूप में लेना चाहिए अथवा उसे एक राजनीतिक शिक्षा का प्रमुख साधन मानना चाहिए? हमारा अनुभव है कि जब तक वास्तविक ध्येय स्पष्ट रूप से मन में न हो, तो हर कार्यक्रम अपना महत्व खो देता है।
2. क्या हम स्थानीय तथा निश्चित विषयों को लेकर गांवों में पूंजीवाद के विरुद्ध सीमित रूप से संघर्ष आरंभ नहीं कर सकते, जिससे लोग संगठित भी होंगे और उनमें सहयोग की भावना भी पैदा होगी। यह खादी प्रयोग के एवज में किया जा सकता है। अगर हमें दोनों में से एक को चुनना पड़े तो किसे पसंद करना चाहिए?
3. अगर आधिपत्य और अहिंसा साथ नहीं चल सकते तो क्या यह उचित न होगा कि सारी भूमि पर राज्य का स्वामित्व हो और राज्य पर जन-साधारण का नियंत्रण हो?
4. आप के विचार में आदर्श समाज-व्यवस्था क्या है?[10]

गांधीजी ने उक्त चुभते हुए प्रश्नों के जो उत्तर दिये, उनसे बोस के मन में गांधी जी के सामाजिक पुनर्निर्माण और सत्याग्रह की पद्धति को लेकर कई आशंकाएं शांत हो गईं।

बोस ने यह भी पूछा—

"क्या हम मान लें कि आप में और समाजवादियों में मौलिक अंतर यह है कि आप मानते हैं, व्यक्ति आत्मनिर्देशन और स्वेच्छा से जीता है, स्वभाव के अनुसार नहीं; और वह मानते हैं कि व्यक्ति आदतन जीता है, इच्छा के अनुसार नहीं? और इसी कारण आप निरंतर आत्मसुधार पर बल देते हैं और वह एक ऐसी व्यवस्था बनाना चाहते हैं जहां व्यक्ति दूसरों का शोषण करने की अपनी इच्छा को पूरा न कर सके?"

गांधीजी ने उत्तर दिया—

"मैं स्वीकार करता हूं कि मनुष्य वास्तव में स्वभाव के अनुसार जीता है, परंतु मानता हूं कि बेहतर यह होगा कि वह अपनी इच्छा के अनुसार जीये। मैं यह भी मानता हूं कि मनुष्य अपनी इच्छा को इतना विकसित कर सकता है कि शोषण को न्यूनतम सीमा तक कम किया जा सके। राज्य-शक्ति की वृद्धि से मैं भयभीत हूं, क्योंकि यद्यपि यह शोषण को कम करता हुआ लगता है, लेकिन वास्तव में व्यक्ति को नष्ट कर मानव मात्र की सर्वाधिक हानि करता है, उसके उसी व्यक्तित्व की, जो समस्त मानव-प्रगति के मूल में है।"

इन मुलाकातों का बोस के मन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा और उन्हें विश्वास हो गया कि गांधीजी के विचारों को समझने के लिए गहरे अध्ययन की आवश्यकता है।

1956 के बाद धीरे-धीरे वे राजनीतिक और खादी से जुड़ी सभी गतिविधियों से अलग होते चले गये और गांधी के विचारों को समझने और प्रसारित करने में संलग्न हो गये। फिर भी, गांधीवादी राजनीतिक और सक्रिय कार्यकर्ताओं से उनका संपर्क बराबर रहा।

मार्च 1938 में देलांग, उड़ीसा में उन्होंने गांधी सेवा संघ के एक सम्मेलन में अतिथि के रूप में भाग लिया। इस अवसर पर उन्होंने सम्मेलन में विचारार्थ तीन प्रस्ताव प्रस्तुत किये—

1. एक केंद्रीय स्थान पर गांधीजी की पूरी लेखन सामग्री का संचय किया जाय।
2. निश्चित विषयों पर उनके लेखन को पुस्तिकाओं के रूप में प्रकाशित किया जाय। एक विषय पर एक ही पुस्तिका प्रकाशित की जाय।
3. सभी भाषाओं में उन पुस्तिकाओं का अनुवाद प्रकाशित किया जाय।

गांधीजी को जब इन प्रस्तावों के बारे में बताया गया तो उन्होंने इन्हें पसंद किया और इनको औपचारिक रूप से स्वीकार कर लिया गया। बोस इस अवसर पर गांधीजी से नहीं मिले, परंतु उन्हें पूरे भारत से आये अनुभवी गांधीवादियों से मिलने और कई व्यावहारिक तथा सैद्धांतिक समस्याओं पर विचार-विमर्श करने का अवसर मिला। बोस लिखते हैं—

''इन अमूल्य भेंटवार्ताओं से मेरे इस विश्वास को बल मिला है कि विचारों को प्रधानता मिलनी चाहिए। तभी कोई कार्य संतोषजनक ढंग से किया जा सकता है, अन्यथा वह केवल एक निरर्थक दिनचर्या बनकर रह जाता है। इस विश्वास से मुझे राजनीतिक और रचनात्मक संगठनों से अलग रहने का भी एक और औचित्य मिला और स्वयं को बौद्धिक कार्य में लगाने की प्रेरणा भी, जिसके प्रति मेरा अपना झुकाव भी था और प्रशिक्षण भी उसी में था।''[12]

बोस ने गांधीवादी आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में अपनी भूमिका स्पष्ट रूप से निर्धारित कर ली थी। गांधी के विचारों, कार्यक्रमों और व्यक्तित्व का कड़ा बौद्धिक विश्लेषण और व्याख्या करने के बावजूद ऐसा लगता है कि अनासक्त रहने के सभी प्रयत्नों के बाद भी बोस गांधीवादी विचारधारा के सामाजिक पुनर्गठन और क्रांतिकारी रूप से प्रभावित थे। बल्कि एक तरह से मोहित भी।

बोलपुर के खादी संघों से निर्मल बोस ने अपना संबंध 1936 तक बनाये रखा और शिक्षागार से उनका संबंध जीवन-भर रहा। खादी और प्रौढ़ शिक्षा के कार्य से जुड़े रहकर उन्हें जाति-व्यवस्था की कार्य-प्रणाली की गहरी जानकारी मिली। समाज के निम्नतम लोग, जो जाति-प्रथा के कारण ही उस स्तर पर रखे जाते हैं, वह भी इस व्यवस्था को अपना पूरा समर्थन देते हैं। उन्होंने अनुभव किया कि इस व्यवस्था की शक्ति का मुख्य स्रोत इस बात में है कि यह उन जातियों को एक अन्योन्याश्रय आर्थिक सूत्र में बांधकर, जाति व्यवस्था को सुरक्षा और एक सीमा तक सामाजिक सुरक्षा प्रदान करती है। बोलपुर

की हरि और डोम जातियों में प्रचलित सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा से वह प्रभावित हुए बिना न रह सके—

"कलकत्ता नगर में मैंने देखा है कि लोग अक्सर उस सभा से उठकर चले जाते हैं, जहां उन्हें कोई वक्ता पसंद नहीं आता, मानो वह सभागार हावड़ा स्टेशन की तरह हो जहां लोग अपने निजी कार्य के लिए आते-जाते आकस्मिक ही मिल जायें और कार्य संपन्न होने पर चल दें। बहुत कम लोग होते हैं जिनमें इतनी शिष्टता होती है कि वह अध्यक्ष की अनुमति से सभागार छोड़ें। परंतु मैंने हरि और डोम जातियों में एक अद्‌भुत बात देखी है जो कि बोलपुर की उपनगरीय गंदी बस्ती में रहते हैं। अगर कोई व्यक्ति बैठक के शुरू होने के बाद आता है तो वह सभा को औपचारिक रूप से प्रणाम करने के बाद ही बैठता है। वह सभा के स्वायत्त अस्तित्व को स्वीकारते हैं और जब सभा में बैठते हैं तो स्वयं को उसकी इकाई के रूप में मानते हैं और अपने अलग अस्तित्व को भूल जाते हैं... अगर इसी प्रकार हम सभा, समाज और समग्र को केवल अलग-अलग व्यक्तियों का एक समूह न मानकर उसे ऊंचा दर्जा दें, तभी सामाजिक व्यवस्था हमारा पोषण कर पायेगी... आज भी हमें अपढ़ निम्न जातियों में अपने स्वायत्त सामाजिक संगठन के प्रति निष्ठा दिखाई देती है। शिक्षित बंगाली में समाज के प्रति निष्ठा पूर्णतः समाप्त हो गई है... इस अभागे नगर कलकत्ता में शिक्षित बंगाली समाज के प्रति अपनी परंपरागत प्रतिबद्धता खो चुके हैं और अंग्रेजों की भांति एक नयी सामाजिक पद्धति का निर्माण करने में असफल रहे है।"[13]

आरंभ से ही, जब बोस उड़ीसा में जुआंग जनजाति क्षेत्र में काम कर रहे थे, जन-जातियों, हरिजनों, बीरभूम के ग्रामीणों, शिल्पियों, अन्य जातियों तथा उड़ीसा के नुलिया और शिल्पियों के व्यवहार से संबंधित क्षेत्रीय अनुभवों की तुलना बंगला भद्रलोक के व्यवहार से करते रहे हैं। इन सभी क्षेत्रों में अपने प्रेक्षण को वह एक बृहत् मानवीय दृष्टलेख से जोड़ते थे, जिसके अंतर्गत एक पुरातन व्यवस्था औपनिवेशिक प्रभाव में टूट चुकी है। वह सामाजिक पुनर्निर्माण की समस्याओं के प्रति बहुत चिंतित थे।

किस प्रकार सामाजिक ढांचे के सैद्धांतिक सर्वेक्षण के आधार पर एक मरणासन्न और दिशाविहीन समाज-व्यवस्था को पुनर्जीवित तथा पुनर्गठित किया जा सकता है, यह उनकी स्थायी बौद्धिक और नैतिक अभिरुचि का विषय हो गया। वे इस बात में गांधी से सहमत थे कि सामाजिक पुनर्गठन का कार्य सदियों पुराने उस विभाजन को तोड़ने से होगा, जो समाज को श्रमिकों और अन्य के बीच बांटता है और जिसे स्वैच्छिक भौतिक सादगी के लिए एक औपनिवेशिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था से बाहर पोषित किया जा सकता है।

इस प्रकार एक सगोत्र जाति-व्यवस्था की प्रक्रिया निर्मल बोस के लिए मानव वैज्ञानिक अध्ययन तथा सामाजिक खोजबीन का मुख्य प्रकरण बन गई। उन्हें पूरा विश्वास था कि सामाजिक पुनर्निर्माण का पहला पाठ ग्रामीणजनों से ही सीखना होगा, जिनकी

देश में निर्णायक बहुसंख्या है। उनके पास अपने सामाजिक, भौतिक और भावनालोक को रूपांतरित करने की कला है, जिससे वह अपने समाज को सुरक्षित रख पाये हैं और जिससे जातियों की प्रतिस्पर्धारहित अन्योन्याश्रय सांस्कृतिक स्वायत्तता बनी हुई है। साथ ही साथ एकीकरण के उच्च स्तरों, जैसे जागीरों, क्षेत्रों, राज्यों और सुदूर तक फैले तीर्थ स्थलों का एक-एक सघन निर्माण इसी ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था की आधारशिला पर हुआ था।

बोस बहुत-सी पुस्तकें पढ़ते थे, परंतु मानवीय परिस्थितियों और समस्याओं के संबंध में उनकी मूल प्रवृत्ति क्षेत्रीय स्थिति के अध्ययन पर निर्भर थी। धीरे-धीरे उन्होंने एक बहुत ही प्रभावशाली पुस्तकालय जुटा लिया था, जिसमें पुरानी पुस्तकों और नक्शों का भी एक बड़ा संग्रह था, जिनसे उन्हें अपने निरंतर चलनेवाले भ्रमणों में सहायता मिलती थी।

वर्षों के अंतराल में बोस की मानव वैज्ञानिक खोज ने एक विशिष्ट रूप धारण कर लिया था। उन्होंने अपनी खोज का केंद्रीय विषय अंतर्जातीय पुनरुद्धार और भारतीय समाज की मुक्ति को बनाया और इसी ध्येय को लेकर वे निरंतर क्षेत्र-अन्वेषक बने रहे। किसी गांव में उन्होंने लगातार कई दिन बिताये, जैसी कि ब्रिटिश कार्यालय के मानव वैज्ञानिकों ने अपनी परंपरा बनाई थी। वे सदैव भौतिक संस्कृति, तकनीक, जनसांख्यिकी, समाज-व्यवस्था तथा जन-साधारण की सांस्कृतिक विरासत पर अपने अनुभवों के आधार पर टिप्पणियां लिखते, भले ही, वे पहाड़ी जनजातीय क्षेत्र में हों, किसी ग्रामीण क्षेत्र में हों अथवा किसी शहरी स्थल में। इसलिए इस पर कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि अनेक बांग्ला पत्रिकाओं जैसे प्रबासी, सनीबारेर चिट्ठी, देश, साहित्य परिषद पत्रिका इत्यादि में प्रकाशित उनके लेखों में कई यात्रा-विवरणों की शक्ल में हैं और कई सामाजिक शब्दचित्रों के रूप में। इनमें से कुछ यात्रा-विवरण और सामाजिक शब्दचित्र दो महत्वपूर्ण संग्रहों—परिब्राजकेर डायरी (1940-1959) और नवीन और प्राचीन (1949)—में प्रकाशित किये गये थे।

बोलपुर में गांधीवादी कार्यों के साथ अपनी संबद्धता के दौरान निर्मल बाबू ने पूरा समय खादी संघ अथवा शिक्षागार में नहीं बिताया। वह अक्सर शांतिनिकेतन और श्रीनिकेतन जाते थे। कई बार वे अपनी मनपसंद बी.एस.ए. साइकल पर सवार होकर खादी का पाजामा और पंजाबी कुर्ता पहने, कंधे से थैला लटकाये जाते दिखाई देते थे। जिन लोगों से वह अक्सर मिलते थे, उनमें से कुछ थे—अखिल चक्रवर्ती (कवि अमिय चक्रवर्ती के छोटे भाई), कृष्ण कृपलानी, रानी छंदा, अनिल छंदा और प्रभात कुमार मुखोपाध्याय। शीघ्र ही उनकी कई कलाकारों से प्रगाढ़ मित्रता हो गई—जैसे नंदलाल बोस, बिनोदबिहारी और रामकिंकर बेज। कलाकारों को उनका संतुलित, परंतु संवेदनशील मन और स्थापत्यकला, मूर्तिकला तथा परंपरागत शिल्पियों के जीवन को लेकर उनका व्यापक ज्ञान बहुत आह्लादित करता था। निर्मल बाबू कलाकार

जैमिनी राय के भी अभिन्न मित्र थे, जो उन दिनों उनके घर के बहुत करीब बाग बाजार में रहते थे।

कृष्ण कृपलानी ने मुझे बताया कि सिंध प्रांत के नीरस वातावरण से आने के कारण वह शांतिनिकेतन के भद्र बंगालियों की भावुकता तथा संवेदनशीलता से कुछ संकोच महसूस करते थे। लेकिन निर्मल बाबू का संतुलित स्वभाव, उनकी खुशमिजाजी, विनोद-वृत्ति और उनकी पत्नी नंदिता उनके लिए ताजा हवा के झोंके की तरह थीं। कृपलानी का कांग्रेसी समाजवादियों—युसुफ मेहरअली, आचार्य नरेंद्र देव, अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता तथा मीनू मसानी से निकट का संबंध था। निर्मल बाबू कृपलानी और उनके कुछ समाजवादी मित्रों के साथ गांधीवाद, समाजवाद और मार्क्सवाद पर तुलनात्मक विचार-विमर्श किया करते थे। कृपलानी ने 'विश्वभारती' त्रैमासिक में गांधीवाद पर लेखों की एक शृंखला लिखने पर निर्मल बाबू को राजी कर लिया था। यह शृंखला थी, गांधी और लेनिन (1935), कोणार्क मंदिर (1935), खजुराहो मंदिर (1935), हिंदू समाज व्यवस्था—एक मीमांसा (1936), सत्याग्रह का दर्शन तथा तकनीक (1938), गांधी के आदर्शवाद पर विचार (1939), मशीन और गांधी के विचार (1939), औद्योगीकरण तथा मशीनरी पर गांधीजी की राय (1939), संपन्नता और संपन्न व्यक्तियों पर गांधीजी के विचार (1940), राज्य संबंधी गांधीजी के विचार (1940), गांधीवाद में मेरी कितनी आस्था है (1941), गांधी की न्यायप्रियता का सिद्धांत, (1945) तथा स्वराज और राज्य (1940)।

कई वर्षों तक कभी-कभी बोलपुर की हरिजन बस्ती में रहने के कारण निर्मल बाबू को रवींद्रनाथ ठाकुर की कृति 'विश्वभारती' को एक नये दृष्टिकोण से देखने का अवसर मिला। बोस रवींद्रनाथ की गंभीर, सुरुचिपूर्ण और आध्यात्मिक संवेदनशीलता से आकर्षित थे। उनके साहित्य, उनके गीतों और उन्हीं दिनों टैगोर ने चित्रकला का जो नया माध्यम अपनाया था, बोस सभी की प्रशंसा करते थे। परंतु वे टैगोर के विवेक-शून्य प्रशंसक अथवा समर्थक नहीं थे। 'नवीन और प्राचीन' के अपने कई लेखों में उन्होंने टैगोर पर कई नयी और कुछ आलोचनात्मक टिप्पणियां भी की हैं। 'एक बंगाली का चरित्र' शीर्षक से एक लेख में बोस ने लिखा है—

"कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता कार्पोरेशन तथा विश्वभारती बंगालियों द्वारा निर्मित कुछ महत्वपूर्ण संस्थाओं में से हैं। ध्यान से विश्लेपण किया जाय तो इन संस्थाओं में व्यक्तिवादी असामाजिक बंगाली की महत्वपूर्ण भूमिका स्पष्ट दिखाई देती है। आशुतोप चितरंजन और रवींद्रनाथ स्वभाव से कट्टर व्यक्तिवादी थे। इसलिए संस्थाएं उनके इर्द-गिर्द स्थापित हुई हैं, वे विचार रखने वाले अनेक व्यक्तियों के समन्वित प्रयत्नों की उपस्थिति नहीं हैं।"[14]

बोस का विश्वास था कि जब तक सामाजिक पुनर्निर्माण की गतिविधियां एक नयी अर्थव्यवस्था की स्थापना के परिप्रेक्ष्य से आधारित नहीं होतीं, तब तक इन प्रयत्नों का

प्रभाव बहुत अधिक नहीं होगा। औपनिवेशिक शोषण से मुक्ति के संघर्ष में जब तक सब सम्मिलित नहीं होते, तब तक यह संभव नहीं होगा।

अपने दो लेखों 'रवींद्रनाथ की साधना' और 'तृष्णा' में बोस ने मत व्यक्त किया कि रवींद्रनाथ मूल रूप से सौंदर्य के कवि हैं—

भीषण तथा रौद्र भावनाएं व्यक्त करने में वे कुछ सहज नहीं हैं। मनुष्य उनको अत्यधिक प्रिय है, तथा प्रकृति और कला उससे भी अधिक अंतरंग है। मनुष्य, प्रकृति और सौंदर्य को छोड़कर वे अकेले एक सूने आध्यात्मिक पथ पर चलने में हिचकिचाते हैं। परंतु वे ऐसे अकेले पथ पर चलने को लालायित हैं, जिस पर उन्हें किसी के अनुमोदन की आवश्यकता नहीं (... बोस के विचार में) यह महान त्रासदी टैगोर के जीवन और कृतियों को एक विशेष अभिप्राय तथा गुण प्रदान करती है।''[15]

सत्तर वर्ष की आयु में चित्रकला का माध्यम अपनाने पर बोस टैगोर के साहस से बहुत प्रभावित थे। वे लिखते हैं—

''एक व्यावसायिक कलाकार की सधी हुई दक्षता उनके हाथ में नहीं थी, परंतु निस्संदेह उनका मानस विश्वकर्मा का था। विश्वकर्मा अपनी कृतियों के लिए किसी की स्वीकृति की प्रतीक्षा नहीं करता। वह स्वयं को उन रंगों और आकृतियों में डुबा लेता है, जो उसे लुभाते हैं वह उनमें लीन हो जाता है। इस प्रकार आदिकालीन पशुओं जैसी महान आकृतियों की रचना की जाती है... रवींद्रनाथ के चित्रों में हमें इस प्रकार की मौलिक सर्जनात्मकता का आभास होता है। वह सुविचारित सतर्कता, जो उनकी साहित्यिक अभिव्यक्ति को बांधे रहती है, आकृति और रंग की मुक्त अभिव्यक्ति में समाप्त हो गई अपनी कला के माध्यम से रवींद्रनाथ ने एक संदेश दिया है कि एक कलाकृति का मूल्यांकन उसकी वास्तविक कलात्मक अभिव्यक्ति के आधार पर ही होना चाहिए, किसी बाहरी रूमानी प्रकरण अथवा प्रतीक पर निर्भर रहते हुए नहीं उन्होंने हमें यह संदेश दिया है कि परंपराओं और रूढ़ियों को त्याग देना चाहिए तथा रंग और आकृति के तात्विक अर्थपूर्ण गुणों पर ही निर्भर रहना चाहिए। उन्होंने अपने कार्य से बंगाल में एक नई कला-सर्जना के पथ-प्रदर्शक की भूमिका चुनी है।''[16]

बोस कभी-कभी उत्तरायण जाया करते थे और अंग्रेजी और बांग्ला कविता पर कवि के प्रतिभाशाली विवरण सुना करते थे।

उन्हें नंदलाल की सीधी-सादी जीवनशैली और उनका अपरिष्कृत-ओजस्वी सौंदर्य-दर्शन, बिनोदबिहारी की कलात्मक और बौद्धिक प्रतिभा तथा रामकिंकर की कला रचनाओं की तेजस्विता अत्यंत आनंदित करती थी। शांतिनिकेतन की स्थापत्य कला पर उन्होंने कुछ आलोचनात्मक टिप्पणी भी की थी—

''कलाकार सुरेंद्रनाथ कार शांतिनिकेतन के विशिष्ट वास्तुशिल्पीय परिरूप के लिए उत्तरदायी हैं। वह एक अच्छे चित्रकार थे, उनके द्वारा बनाये गये परिरूपों पर जो मकान बनाये गये हैं, उनमें सजावट का आधिक्य नहीं है परंतु शांतिनिकेतन के वास्तुशिल्पीय

रूप विधान में अभी स्थायित्व नहीं आया है। कभी-कभी सजीव सौंदर्य और क्रियात्मक उपयोगिता के बीच असंगति-सी भी दिखाई देती है। इस प्रकार का बेमेलपन स्थापत्य कला के नये प्रयोगों में अनिवार्य-सा है और हमें आशा है कि एक जीवंत प्रयोग के रूप में वह इस प्रकार की सभी असंगतियों को दूर कर सकेगा।''[17]

5

विश्वविद्यालय को वापसी

1930 और 1937 के दौरान, जब बोस बोलपुर के समीप एक हरिजन बस्ती में गांधीवादी सामाजिक पुनर्गठन के कार्य में संलग्न थे, तब उनके द्वारा लिखे गये मंदिर स्थापत्य कला, जाति-व्यवस्था, बांग्ला समाज एवं सांस्कृतिक संपर्क तथा परिवर्तन और गांधीवाद के विभिन्न पक्षों पर आलोचनात्मक लेखों ने कलकत्ता के बुद्धिजीवियों का ध्यान आकर्षित किया। लोगों को आश्चर्य था कि उस शहर में पोषित एक बुद्धिजीवी किताबों की दुनिया से निकलकर मानवीय परिस्थितियों के प्रत्यक्ष अवलोकन और आम जनता से निकट संपर्क के आधार पर उनको समझने चला है, और वह क्षेत्रीय पर्यवेक्षण में कठिन परिश्रम करनेवाला एक ऐसा वैज्ञानिक और नास्तिक भी है, जो सामाजिक पुनर्निर्माण में गांधीवादी पद्धति और विचार में गहरी रुचि रखता है।

सन् 1937 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने निर्मल बोस को मानव विज्ञान विभाग में सहायक प्रवक्ता के पद पर कार्य करने के लिए राजी कर लिया। बोस ने प्रागैतिहासिक पुरातत्व विज्ञान स्नातक तथा स्नातकोत्तर कक्षाओं में पढ़ाना आरंभ किया। पढ़ाते हुए उन्होंने अनुभव किया कि विद्यार्थियों के लिए विषयवस्तु केवल एक कल्पना रह जायेगी, यदि उन्हें स्वयं पुरातत्व की खोजबीन और उन्नयन में न लगाया जाय। और ऐसा अवसर 1939 में आया।

मार्च 1939 में हार्वर्ड विश्वविद्यालय के श्री यूजीन सी. वामर्न ने चक्रधरपुर से बोस को एक पत्र लिखा—

''मयूरभंज में कुछ ऐसे उत्कृष्ट पुरापाषाण स्थल हैं, जैसे मैंने कम ही देखे हैं...बारीपाड़ा के आसपास मैंने छः नये पुरातत्व स्थल खोजे हैं...स्थान का नाम कुलियाना है...।''[18]

मयूरभंज रियासत ने कलकत्ता विश्वविद्यालय को कुलियाना में खोज जारी रखने की स्वीकृति दे दी। इस क्षेत्र में खुदाई और खोज के लिए अप्रैल, 1932 में धरणीसेन, श्री बोस के साथ सम्मिलित हुए और दोबारा 24 दिसंबर, 1939 से 31 जनवरी, 1940 तक। बाद में अप्रैल, 1941 में वहां फिर खुदाई का कार्य आरंभ किया गया और जनवरी 1942 में भी कई नये स्थलों को खोज निकाला गया।

प्रागैतिहासिक औजारों का एक समृद्ध संग्रह एकत्रित हो गया, जिन्हें विभाग की पुराइतिहास इकाई ने संभाला। 1941 में विश्वविद्यालय के मानव विज्ञान विभाग में गौतम शंकर राय ने एम.एससी. में प्रवेश लिया। उनका कथन है—

''निर्मल बाबू नियमित रूप से उत्तरी कलकत्ता से आया करते थे। वे स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं को प्रागैतिहास की सैद्धांतिक और प्रायोगिक जानकारी देते थे और शाम को ही विभाग से लौटते थे। कक्षाओं के बाद वह मयूरभंज में संग्रहित किये हुए उपकरणों की सफाई और वर्गीकरण में समय व्यतीत करते थे। हमारी कक्षा में दिये गये अपने पहले व्याखान में उन्होंने कुछ उपकरण और वनस्पतियों के जीवांश दिखाये और पूछा कि क्या हम यह बता सकते हैं कि ये अवशेष क्या हैं।

''अपने व्याख्यानों को वह उन ठोस उद्धरणों पर आधारित कर विकसित करते थे कि मनुष्य द्वारा बनाये गये पत्थर के औजार को किस प्रकार पहचाना जा सकता है और जीवांश का क्या अर्थ है और भूवैज्ञानिक काल-निर्धारण में उनका क्या महत्व है... हम लोग निर्मल बाबू और उनके कुछ सहयोगियों द्वारा खोजे गये प्रागैतिहासिक उपकरणों की सफाई, माप और वर्गीकरण के कार्य से काफी कुछ उद्दीप्त थे। मेरे विचार में उनके अध्यापन का श्रेष्ठ गुण यही था कि वह विद्यार्थियों को ज्ञानार्जन के कार्य में भागीदार बनाते थे।''[19]

निर्मल बोस हालांकि सिर्फ प्रागैतिहास की कक्षाएं लेते थे, परंतु दूसरे अध्यापक और विद्यार्थी उनकी शैक्षिक और सामाजिक रुचियों की व्यापकता को समझते थे। स्थापत्य कला, जाति-व्यवस्था, गांधीवाद, बंगला मध्यवर्ग और हिंदू जाति-व्यवस्था से जनजातियों के जुड़ने की समस्याओं पर उनके लेखों से वह परिचित थे। वह केवल सहायक व्याख्याता के पद पर थे, लेकिन विद्यार्थी और अध्यापकगण जानते थे कि उनके बीच एक अपूर्व तेजस्वी, मौलिक, बौद्धिक और प्रतिभाशाली व्यक्तित्व मौजूद है। कलकत्ता में वे एक श्रेष्ठ वक्ता और वाद-विवाद में दक्ष व्यक्ति के रूप में प्रसिद्ध थे। विद्यार्थियों ने यह देखा था कि बोस हर समय बाहर जाकर कार्य करने के लिए तत्पर रहते थे।

1937 और 1942 के दौरान उन्होंने बांग्ला और अंग्रेजी में प्रागैतिहासिक पुरातत्व विज्ञान, सामाजिक-सांस्कृतिक मानव विज्ञान और गांधीवाद पर कई लेखों तथा पुस्तकों की रचना की। कुछ महत्वपूर्ण प्रकाशन हैं—मयूरभंज में प्रागैतिहासिक खोज (विज्ञान और संस्कृति) 6, 75-79/1940, गांधीवाद का अध्ययन (1940) कुलियाना, मयूरभंज के शिलाखंड संगुटिका तल की आयु (1941) तथा परिव्राजकेर डायरी (1940)'। इस दौरान उनका सर्वाधिक खोजपूर्ण मानव वैज्ञानिक प्रपत्र था—'कबायली समावेशन की हिंदू पद्धति'। यह उन्होंने भारतीय मानव विज्ञान और पुरातत्व विज्ञान कांग्रेस के सम्मुख 3 जनवरी, 1941 को प्रस्तुत किया।[20] यह पत्र उड़ीसा के जुआंग कबीलों के प्रारंभिक अनुभव पर आधारित था और इसमें इस तथ्य पर बल दिया गया

था कि जैसे-जैसे जन-जातियों की अर्थव्यवस्था मैदानी क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था से संघटित होती जाती है, वैसे-वैसे वह सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से खेतीहर जातियों में समन्वित हो जाते हैं। संख्या, राजनीति और आर्थिक रूप से प्रबल समूहों से अपेक्षाकृत दुर्बल समूहों की ओर विशेषताएं प्रवाहित होती हैं। कबायली लोग इन विशेषताओं के प्रवाह का विरोध नहीं करते, क्योंकि इसकी प्रक्रिया धीमी होती है। उन्हें इससे आर्थिक सुरक्षा और एक निश्चित सीमा तक सांस्कृतिक और सामाजिक स्वायत्तता भी उपलब्ध होती थी। इस सुसंगत लेख में बीस के बाद के विचारों का मूल आधार था, जो उन्होंने बाद में कबायली और जाति-व्यवस्था के पारिस्थितिकीय जन-सांख्यिकीय, सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक परिप्रेक्ष्य में प्रतिपादित किये। विशेष रूप से व्यक्तिगत भूमि के विशेष रूप, अनुपात और विभिन्न कबायली और जाति-प्रणाली की उत्पादन-व्यवस्था की वहन क्षमता पर बाद में उन्होंने जो बल दिया, उसका मूल आधार इसमें था।

बोस ने अपने अध्यापन-कार्य को मानव विज्ञान विभाग और बाद में भूगोल विभाग में भी बहुत गंभीरता से लिया। 'विज्ञान शिक्षक के अनुभव' शीर्षक एक लेख में उन्होंने लिखा—

''जितनी इस विषय के संबंध में मेरी समझ गहरी और स्पष्ट होती जा रही है, उतनी ही मेरी अध्यापन की भाषा सादी और सुबोध होती जा रही है। मुझे ज्ञात हो रहा है कि जैसे एक गृहिणी को खराब मछली पकाने के लिए प्याज और मिर्चों का मसाला बनाना पड़ता है, उसी प्रकार गलत ज्ञान पर आधारित भाषण की भाषा भी अलंकृत करनी होती है ''

''मैं सतर्क रहकर विद्यार्थियों को अपने संशय दूर करने और प्रश्न पूछने के लिए उत्साहित करने का प्रयत्न करता हूं, मैं अपने व्याख्यानों द्वारा उनके प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न भी करता हूं किसी भी विषय का विवरण देते हुए दो पद्धतियों का प्रयोग किया जा सकता है। प्रागैतिहासिक काल की जलवायु के विषय में हमारा ज्ञान संपूर्ण नहीं है। विभिन्न देशों में संचित सामग्री के वैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर विद्वानों ने कुछ निष्कर्ष निकाले हैं। या तो हम उन निष्कर्षों को अपने व्याख्यानों का मुख्य विषय बना सकते हैं या फिर इन संचित तथ्यों को, जिनका हर प्रकार से परीक्षण किया जा चुका है, अपने प्रस्तुतीकरण की मुख्य विषयवस्तु बना सकते हैं। अगर हम निष्कर्षों पर बहुत अधिक बल देंगे तो मानव विज्ञान एक वैज्ञानिक विधा के रूप में प्रकट नहीं हो पायेगा, बल्कि वह केवल स्वीकृत सिद्धांतों का एक ऐतिहासिक वृत्तांत प्रतीत होगा। ये फिर ऐसे विषय बन जाते हैं, जिन्हें केवल याद ही करना है और स्वयं के बौद्धिक प्रयास से समझे जानेवाले सिद्धांत नहीं रहते। विद्यार्थी यह नहीं समझ पाते कि हर व्यक्ति ध्यानपूर्वक संग्रहित किये हुए तथ्यों को अपनी कल्पना-शक्ति का सही और नियमित प्रयोग करके प्रासंगिक वैज्ञानिक निष्कर्ष निकालने की क्षमता रखता है। इस नासमझी

की अवस्था में वह यूरोप के प्रसिद्ध विद्वानों की प्रशंसा करना सीखते हैं, उन पर श्रद्धा रखने लगते हैं और उनको मानवजाति के विशिष्ट वर्ग का सदस्य मानने लगते हैं। इस प्रकार की शिक्षा-पद्धति न तो अनुसंधान की मनोवृत्ति को पैदा करने में सहायक होती है, न ही उससे किसी प्रकार आत्मविश्वास को बल मिलता है। वह लोग कड़ाई से परखी हुई उक्तियों के बजाय वैज्ञानिक पाठ्यपुस्तकों की आराधना करने लगते हैं। उनके मानस पर एक नये प्रकार का गुरुडम का धुंधलका छाने लगता है और उनमें आत्मविश्वास की वृत्ति पैदा नहीं होती।''

''दूसरी तरफ अगर हम अपने व्याख्यानों के वैज्ञानिक तथ्यों, सत्य और अन्वेषण के प्रति एक स्वतंत्र वृत्ति उत्पन्न करने पर बल दें, तुलना करके यह दिखायें कि समान तथ्यों के समूह को विभिन्न विद्वानों ने किस प्रकार अलग-अलग रूप में प्रतिपादित किया है और मूल्यांकन करने का प्रयत्न करें कि किस निष्कर्ष में वैज्ञानिक सत्यता को उचित नियंत्रण में रखा गया है, और कौन-से परिणाम अन्वेषण तथा पर्यवेक्षण के नये क्षेत्र खोलते हैं, तो कक्षा में आत्मविश्वास और प्रयास की एक स्वस्थ मनोवृत्ति पैदा होगी और गुरु की उपासना को कम करने में भी सहायता मिलेगी। वह अनुभव करने लगेंगे कि विज्ञान में अन्वेषक उनके ही आत्मिक भाई हैं, उनके साथी हैं... विज्ञान में गुरुडम का कोई स्थान नहीं, इसमें आत्मविश्वास की वृत्ति ही वांछनीय है। कल्पना की आवश्यकता है, परंतु कल्पना को भी प्रेक्षित तथ्यों की सीमाओं का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। कोई भी निष्कर्ष अंतिम नहीं माना जाना चाहिए और एक वैज्ञानिक को अपने निष्कर्षों से भावुकतापूर्ण ढंग से नहीं बंधे रहना चाहिए। विद्यार्थियों को यह बताने की आवश्यकता है कि एक वैज्ञानिक अपने प्रयोगात्मक सिद्धांत को अपने बाएं हाथ से बनाता है और दाएं हाथ से अस्वीकार करने के लिए तैयार रहता है...''

''अगर हम अपने विद्यार्थियों को केवल विद्यार्थी ही नहीं, बल्कि अपने सहयोगी मानना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि हमें स्वयं को अथक अन्वेषकों और सत्य के खोजकर्ता के रूप में प्रस्तुत करना होगा...।''[21]

बोस को इस बात का खेद है कि अध्यापक और विद्यार्थी में सहयोग की जो भावना पैदा होती है और सम्मिलित रूप से खोज करने की जो वृत्ति पनपती है, उसमें स्नातक परीक्षा की औपचारिक तैयारी के कारण विघ्न पड़ जाता है। उनके विचार में विद्यार्थियों के मन में परीक्षा का भय नहीं होना चाहिए। उन्हें यह विश्वास था कि—

''अगर शिक्षक और विद्यार्थियों के मन में भय तथा लोभ छाये न रहें और अगर दोनों सत्य के प्रति निष्ठावान और तन-मन से पूर्णरूपेण सक्रिय रहें, तो दोनों के सहयोग से विज्ञान का विकास करना संभव है।''[22]

वे विद्यार्थी तथा अन्वेषक, जो उनके साथ मानव विज्ञान विभाग तथा बाद में भूगोल विभाग अथवा एंथ्रोपोलोजिकल सर्वे आफ इंडिया में उनके साथ रहे; और अनेक दूसरे विद्यार्थी तथा विद्वान जो विभिन्न विषयों से जुड़े थे और जिनका संपर्क उनके साथ उनके

जीवन के विभिन्न चरणों में रहा—उनकी सहज साहचर्य की भावना, निर्भीकता, तथ्यों को नये दृष्टिकोण से देखने की साहित्यिक कल्पना और अन्वेषण के प्रति उनके दृढ़ अनुराग को अनुभव करते थे। वह ज्ञान और सत्य की खोज में उतनी ही रुचि रखते थे, जितनी कि ऐसे ज्ञान की स्थापना में जो समाज के व्यक्तियों और समाज के दुखों को दूर करने में सहायक हो।

आश्चर्य नहीं कि एक सहायक व्याख्याता को सभी लोग श्रद्धा से प्रेरित होकर प्रोफेसर के रूप में संबोधित करते थे। ऐसा लगता था, जैसे इस असाधारण शिक्षक, विचारक और शोधकर्ता को कलकत्ता नगर ने सम्मानार्थ डाक्टर की उपाधि प्रदान की हो। वह संपूर्ण स्वतंत्र भाव से टहलते रहते थे और उनका अनवरत सहयोग हर विद्यार्थी को उपलब्ध था।

1937 में बोलपुर के शिक्षागार के साथ अपने संपर्क को कलकत्ता विश्वविद्यालय में आने के बाद भी जारी रखा। उनका एक प्रिय अड्डा उस समूह के साथ था, जो सजनीकांत दास के पास एकत्रित होता था। सजनीकांत दास उन दिनों 'शनिवार चिट्ठी' के संपादक थे। अपने डेंटिस्ट मित्र डा. बंकिम मुखर्जी के केंद्रीय कलकत्ता के वाटरलू स्ट्रीट स्थित घर पर भी वे कुछ समय बिताते।

बोस अब भी नियमित रूप से न सही, पर सामान्यत: महीने में एक बार अपनी मां और पथुरिया साही में अपने शिल्पी मित्रों से मिलने जाते थे। उड़ीसा के मंदिरों पर नयी सूचना एकत्रित करने का काम भी उन्होंने जारी रखा।

हुगली कांग्रेस समूह के गांधीवादियों के साथ भी उन्होंने निकट का संपर्क बनाये रखा। प्रफुल्ल सेन और भूपेन सेनगुप्ता उनके निकट के मित्र थे। अतुल्य घोष के साथ भी उनके अच्छे संबंध थे। गांधीवादी कांग्रेस कार्यकर्ताओं में शक्ति प्रेस में एकत्रित होनेवाले धनकुबेरों से उनका विशेष संबंध था। वहां से 1942 के आंदोलन के प्रारंभिक चरण में 'हरिजन' नामक पत्रिका का बंगला संस्करण प्रकाशित होता था। शक्ति प्रेस में आशुतोष दास, सतीशचंद्र सेनगुप्ता, रत्नमणि चट्टोपाध्याय, सुधीर लाहा, अनंतनाथ बसु, विनयचंद्र भट्टाचार्य, मनोरंजन गुहा और प्रियरंजन सेन से वे अक्सर मिलते थे। सतीश दासगुप्ता के खादी प्रतिष्ठान के वह बहुत प्रशंसक थे। बोस इन मित्रों के रचनात्मक कार्यों में रुचि रखते थे और किसी औपचारिक राजनीतिक गतिविधि से पूरी तरह दूर रहना चाहते थे।

उन्होंने कभी भी किसी राजनीतिक शक्ति या पद को प्राप्त करने में कोई रुचि नहीं दिखाई। उन्होंने भारत के राजनीतिक विकास का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया। जुलाई 1937 में जब अखिल भारतीय कांग्रेस पार्टी ने 11 प्रांतों में से सात में मंत्री-परिषदों का गठन किया और बाद में दो अन्य प्रांतों में संयुक्त मंत्रिमंडल बनाये, तो उस पूरे घटनाक्रम और उस के प्रति गांधीजी की प्रतिक्रिया को बहुत गहराई से समझने का प्रयत्न श्री बोस ने किया।

उन्होंने बिहार में रहनेवाले बंगालियों के इस आरोप का आलोचनात्मक परीक्षण किया कि हिंदीभाषी बिहारी उन पर आवासीय प्रमाणपत्रों को थोप रहे हैं और उनके विरुद्ध सेवाओं में भेदभाव किया जा रहा है। उन्होंने पाया कि न्यायाधीश पी.आर.दास बंगाली समिति के सभी बांग्लाभाषियों को संगठित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। बंगाली समिति छोटे-छोटे कारखाने संचालित करने की योजना बना रही थी, जिनमें केवल बंगालियों को ही काम दिया जायेगा। समिति की यह भी योजना थी कि सभी बंगाली केवल बंगला दुकानदारों से ही वस्तुएं खरीदें और वह बिहार में निर्मित वस्तुओं का बहिष्कार करने के लिए एक आंदोलन संचालित करना चाहती थी। निर्मल बाबू को लगा कि इस प्रकार का बंगाली सांप्रदायिक आर्थिक संगठन राष्ट्रीय चेतना के विकास में बाधक होगा। उन्होंने सुझाव दिया कि बंगाली समिति अपने प्रयत्नों को सुदृढ़ बनाने के लिए कुछ रचनात्मक गांधीवादी कार्यक्रमों को अपनाये, जैसे खादी, नशाबंदी, ग्रामीण पुनर्गठन इत्यादि। उन्हें इस बात पर बल देना चाहिए कि वह बिहारियों से किसी प्रकार अलगाव की भावना का समर्थन नहीं करते और कई प्रकार के अखिल भारतीय कार्यक्रमों को अपनाने के लिए कृतसंकल्प हैं। उन्हें दृढ़तापूर्वक कहना चाहिए कि वह केवल नौकरियों के लिए वहां नहीं रहते, बल्कि उनका उद्देश्य भारत को स्वतंत्र बनाना है।

बोस ने यह भी सुझाव दिया कि अगर बंगाली समिति कृषकों और मजदूरों को संगठित करे और उनके हितों की रक्षा कर सके, तो उसे व्यापक राजनीतिक शक्ति प्राप्त होगी। परंतु बंगालियों को उसके लिए मजदूर बनना पड़ेगा और अन्य मजदूर वर्गों से अपने हितों को जोड़ना होगा। भाषा और धर्म के भेद भी भुलाने पड़ेंगे और उन सबकी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करना पड़ेगा।

बोस जानते थे कि इस प्रकार का आदर्शवादी मार्ग रुढ़िवादी मध्यवर्ग को, जिसका बंगाली समिति में बहुमत था, स्वीकार नहीं होगा। लेकिन यही वह मार्ग है, जो बंगालियों को उनके उचित अधिकार दिलाने में सहायक होगा और भारतीय स्वतंत्रता के लिए किये जा रहे प्रयत्नों को संघठित करने में भी सहायक होगा। बोस को आशा थी कि युवावर्ग उनके विचारों को अनुग्रहपूर्वक स्वीकार करेगा।[23]

सुभाषचंद्र बोस 1938 में कांग्रेस के गरमदलीय गुट की सहायता से, जिनमें नेहरू और अन्य समाजवादी भी थे, कांग्रेस अध्यक्ष चुने गये। 1939 में पुनः अध्यक्ष चुने गये, बावजूद इसके कि गांधीजी ने उनका विरोध किया था। गांधीजी को आशंका थी कि सुभाष बोस कांग्रेस पार्टी को शीघ्र ही ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष के लिए प्रेरित करेंगे और गांधीजी के विचार में इसके लिए न तो कांग्रेस तैयार थी और न ही जनता। ऐसे में उचित रचनात्मक कार्यक्रम से अनुशासित न होने वाले अराजक तत्व प्रबल हो उठेंगे।

यह सर्वविदित है कि सुभाष बोस ने कांग्रेस पार्टी से 1940 में त्यागपत्र दे दिया और फारवर्ड ब्लाक के नाम से एक नया अखिल भारतीय दल स्थापित किया। इसके बाद भी उनकी घर में नजरबंदी, वहां से उनका अफगानिस्तान होते हुए मार्च, 1941 में जर्मनी भाग जाना, जापानियों की सहायता से आई.एन.ए. की स्थापना और 1945 में एक हवाई दुर्घटना में उनकी मृत्यु की कहानी पर बहुत कुछ लिखा गया है।

निर्मल बोस भी स्वीकारते थे कि 1940 में अगर सशस्त्र विद्रोह का आह्वान किया जाता तो देश उसके लिए तैयार नहीं था और उससे केवल फासीवादी ताकतों को ही देश पर नियंत्रण करने का अवसर मिलता। उनके मन में सुभाष बोस के राष्ट्रीय स्वतंत्रता के उद्देश्य को लेकर एकनिष्ठ समर्पण की भावना के प्रति गहरी श्रद्धा थी, फिर भी उन्हें विश्वास था कि गांधीजी का निर्णय सही था कि देश को अंतिम कदम उठाने से पहले एक रचनात्मक ढंग और व्यापक तैयारी की आवश्यकता है। स्पष्ट था कि गांधी की व्यक्तिगत पसंद एक अहिंसात्मक आंदोलन के लिए थी।

6

अगस्त आंदोलन

1941 तक यूरोप में लड़ाई अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुकी थी और हिटलर लगभग पूरे यूरोप को अपने अधीन कर चुका था। दिसंबर, 1941 में जापान ने पर्ल हार्बर पर अचानक हमला कर युद्ध में प्रवेश किया। जापानी सेनाओं ने तेजी से फिलीपींस, हिंदचीन, हिंदेशिया, मलाया, और बर्मा को अपने नियंत्रण में कर लिया। ब्रिटेन भारतीय नेताओं से बातचीत करने के लिए उत्सुक था, जिससे युद्ध-कार्य में भारत का पूरा सहयोग प्राप्त हो सके। सर स्टैफर्ड क्रिप्स को ब्रिटिश सरकार ने अपना प्रतिनिधि बनाकर बातचीत के लिए भेजा। क्रिप्स ने युद्ध की समाप्ति पर भारत को स्वतंत्र उपनिवेश का दर्जा (Dominion Status) देने का वायदा किया, परंतु देश ऐसे किसी वायदे को स्वीकारने को तैयार नहीं था, जिसे भविष्य में पूरा किया जाना है।

मार्च, 1942 में रंगून-पतन के बाद गांधीजी ने एक आंदोलन शुरू करने का निर्णय किया। तय किया गया कि ब्रिटिश सरकार से भारतीयों को सत्ता सौंपने को कहा जाय।

मई, 1942 में दादाभाई नौरोजी की पोती खुर्शीद ए.डी. नौरोजी एक विशेष उद्देश्य से बंगाल आईं। नेताजी सुभाषचंद्र बोस उन दिनों विदेश से भारतीय जनता के नाम रेडियो प्रसारण कर रहे थे। रंगून का पतन हो ही चुका था। खुर्शीद यह जानने के लिए चिट्टागांव गईं कि अगर ब्रिटेन भारत से हट जाये और अगर नेताजी जापानी सेनाओं के साथ आयें, तो जन-प्रतिक्रिया क्या होगी। चिट्टागांव से लौटने पर उनका संपर्क कलकत्ता में विभिन्न राजनीतिक दलों से हुआ और उन्होंने इस बात का जायजा लेना चाहा कि अगर गांधीजी कांग्रेस की भारत छोड़ देने की मांग को पूरा कराने के लिए आंदोलन आरंभ करें, तो जनता का रवैया क्या होगा। इससे पहले सेवाग्राम में अब्दुल गफ्फार खान ने बोस से खुर्शीद का परिचय करवाया था।[24]

इस यात्रा के दौरान खुर्शीद और निर्मल बाबू अच्छे मित्र हो गये। बोस का उन पर अनुकूल प्रभाव था।

कलकत्ता के कुछ गांधीवादियों, शक्ति प्रेस समूह, ने यह अनुभव किया कि अगर इतनी जल्दी एक अनोखा आंदोलन शुरू होने जा रहा है, तो यह आवश्यक है कि गांधीजी का संदेश देश के विभिन्न लोगों तक शीघ्रातिशीघ्र जनभाषाओं में

पहुंचाया जाय। मनोरंजन गुहा गांधीजी से इसके लिए परामर्श करने गये और गांधीजी ने अपनी स्वीकृति दे दी। विजय भट्टाचार्य, रत्नमणि चट्टोपाध्याय, सुधीर लाहा और निर्मल बोस की सहायता से मनोरंजन गुहा ने बंगला में 'हरिजन' पत्रिका का पहला अंक 2 अगस्त, 1942 को प्रकाशित किया। निर्मल बोस ने गांधीजी के प्रसिद्ध व्याख्यान 'यह अग्नि जो मेरे अंदर भभकती है' का बांग्ला में अनुवाद किया। 8 अगस्त, 1942 को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पारित किया। 9 अगस्त को सूर्योदय से पहले गांधी, नेहरू और अन्य जाने-माने कांग्रेसी नेताओं को जेल भेज दिया गया। 'हरिजन' पत्रिका के दो और अंक 9 और 16 अगस्त को प्रकाशित हुए। तभी शक्ति प्रेस पर पुलिस ने छापा मारा और जो भी वहां था, उसे गिरफ्तार कर प्रेस में ताला जड़ दिया। 'हरिजन' पत्रिका के बांग्ला संस्करण की असाधारण मांग थी।

निर्मल बोस को उनके निवास से 17 अगस्त, 1942 की रात्रि में गिरफ्तार किया गया। प्रेसिडेंसी जेल में कुछ दिन रखने के बाद उन्हें दमदम सेंट्रल जेल ले आया गया, और राजनीतिक बंदी की 'अ' श्रेणी दी गई। पुस्तकें और अन्य पत्र इत्यादि उन्हें अपनी कोठरी में पुलिस निरीक्षण के बाद लाने का अधिकार था। बंदियों के लिए विभिन्न वार्डों में आने-जाने पर शाम के 5 बजे तक कोई प्रतिबंध नहीं था, और एक ही वार्ड की अलग-अलग कोठरियों में रात के नौ बजे तक आने-जाने की छूट थी।

मनोरंजन गुहा लिखते हैं—

''मुझे निर्मल दा के विशिष्ट व्यक्तित्व को जेल और जेल के बाहर मुक्त वातावरण में करीब से देखने का अवसर मिला...उनमें और अन्य दूसरे गांधीवादियों में, जो उस समय बंदीगृह में थे, एक अंतर दिखाई देता था, विशेषकर उनसे जिन्होंने अपने इर्द-गिर्द आनुष्ठानिक वातावरण बना रखा था। ऐसे लोगों के प्रति उनके मन में एक द्वैध भाव था। ऐसा नहीं था कि निर्मल बाबू के मन में ऐसे लोगों के प्रति सम्मान की कोई कमी हो। कोई भी व्यक्ति उन कामों को करने में निर्मल दा से आगे न था, जो किसी भी गांधीवादी से अपेक्षित थे। उन्हें गांधीवाद का प्रमुख सिद्धांतवादी स्वीकार किया जाता था। साथ ही जेल में वे एक ऐसे व्यक्ति के रूप में जाने जाते थे जो स्वयं बढ़िया सूत कातता है, अनथक भाव से दूसरों को सिखाता है और औजारों की देखभाल करने में भी निपुण है। वे जो भी करते थे, उसमें दक्ष थे, परंतु कभी भी उन्होंने अपनी दक्षता और निपुणता पर दंभ या अभिमान नहीं किया।

''राजनीतिक बंदियों के लिए अन्य सामान्य बंदियों से काम लिया जाता था। ऐसे बंदियों को 'फालतू' कहा जाता था...निर्मल दा ने कभी किसी 'फालतू' से मेहतर का काम नहीं करवाया और वे स्वयं सारा कार्य करते थे।

''यह अपरिहार्य था कि लंबे कारावास के कारण कुछ समस्याएं पैदा हों, जिन्हें संवेदनशीलता और सूझबूझ से ही सुलझाया जा सकता था। निर्मल दा से अधिक उदार सूझबूझ वाला कोई व्यक्ति नहीं था। मुझे कई ऐसे उदाहरण याद हैं, जिनमें निर्मल दा की सेवाएं बहुत महत्वपूर्ण थीं।

''निर्मल दा का जीवन बहुत नियमित था। वे खाना बहुत सावधानी और समय से खाते थे और स्वाद पर कड़ा नियंत्रण रखते थे। वे नियमित रूप से यौगिक आसन, जिनमें शीर्षासन भी सम्मिलित था, किया करते थे। उन्हें अपने स्वास्थ्य पर भरोसा था और समय-समय पर कुछ शारीरिक प्रयोग करने की आदत थी, जिसमें वे अपने देहबल की परीक्षा करते थे और उसके मनोवैज्ञानिक प्रभावों को भी समझते थे। निर्मल दा ने पतंजलि योगसूत्र का अध्ययन किया था। वे इस बारे में कम बताते थे और उनके अधिकतर प्रयोगों के संबंध में दूसरों को कुछ भी ज्ञान नहीं था।''[25]

1943 में बंगाल में आए भीषण अकाल की सूचना राजनीतिक बंदियों को दमदम जेल में ही मिली। निर्मल बाबू ने सुझाव दिया कि क्योंकि हमें 'अ' श्रेणी के बंदी के नाते अच्छा भोजन मिलता है, इसलिए सरकार से कहना चाहिए कि हम एक समय का भोजन त्यागना चाहते हैं, ताकि उसे खाने की खोज में ग्रामीण क्षेत्रों से शहर आये गरीबों में बांट दिया जाये। बहुत-से बंदियों को यह सुझाव पसंद नहीं आया। फिर भी, निर्मल बाबू ने बेझिझक एक समय भोजन करना छोड़ दिया और एक महीने तक लगातार ऐसा किया। उनका वजन काफी कम हो गया था, परंतु फिर भी उनकी दिनचर्या में किसी प्रकार का परिवर्तन दिखाई नहीं दिया, न ही उनकी स्फूर्ति में किसी प्रकार की कमी हुई।

साढ़े तीन वर्ष के कारावास में उन्हें पढ़ने-लिखने और उन विषयों पर गंभीरतापूर्वक सोचने का काफी समय मिला, जिनमें उनकी गहरी रुचि थी। उन्हें दूसरों की सहायता करने और उनको खुशमिजाज बनाये रखने का भी पर्याप्त अवसर मिला। एक विश्वसनीय कार्यकर्ता होने के नाते उन्होंने कई परिचर्चाएं आयोजित की, जिनमें गांधीवादी और अन्य समाजवादियों द्वारा अपने-अपने मत व्यक्त किये जाते थे। उनके सुझाव पर बंगाल के विभिन्न जिलों के कांग्रेसी नेताओं ने अपने-अपने जिलों के लोगों की जीवनशैली और आर्थिक तथा सामाजिक परिवेश के बारे में वे जो कुछ जानते थे, वह सब लिखित रूप में दिया। कारावास से छूटने के बाद बोस ने इन टिप्पणियों को संपादित कर इन्हें लेखों के रूप में प्रकाशित किया और फिर 1971 में एक पुस्तक का रूप दिया, जिसका शीर्षक था 'ब्यालीस का बंगाल'। बोस ने एक और पांडुलिपि 'मयूरभंज में खुदाई' (Excavations at Mayurbhanj) शीर्षक से तैयार की, जो कि 1948 में कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा उनके और धरणी सेन के संयुक्त कृतित्व के रूप में प्रकाशित की गई।

बोस ने अपने साथी राजनीतिक बंदियों के बीच भारतीय समाज की संरचना और उसमें हुए परिवर्तनों पर मानव वैज्ञानिकों के दृष्टिकोण को लेकर कुछ भाषण दिये। यही

भाषण बाद में एक महत्वपूर्ण पुस्तक 'हिंदू सामाजेर गरण' का आधार बने, जिसे लोक शिक्षा ग्रंथमाला के अंतर्गत 1356 विक्रमी संवत (1949 ईसवी) में विश्वभारती द्वारा प्रकाशित किया गया। बाद में एंड्रेबतील ने इस पुस्तक का अंग्रेजी में अनुवाद किया जिसका, शीर्षक था—'हिंदू समाज की संरचना' (The Structure of Hindu Society)। यह पुस्तक ओरियंट एंड लांगमेन लिमिटेड से 1975 में प्रकाशित हुई।

बांग्ला में लिखी गई यह छोटी-सी पुस्तक सभ्यता के सामाजिक संगठन के अध्ययन में मानव वैज्ञानिक उपागम को लागू करने की दिशा में एक अग्रगामी प्रयत्न है। यह भी स्मरणीय है कि यह पुस्तक उससे भी कुछ वर्ष पहले लिखी गई, जब पश्चिम में राबर्ट रैडफील्ड द्वारा सभ्यताओं के अध्ययन के लिए एक व्यवस्थित मानव वैज्ञानिक उपागम के प्रयोगधर्मी प्रयत्न किये गये।

उक्त पुस्तक 'चैतन्य चरित्रामृत' के एक लंबे उद्धरण से आरंभ होती है, जिसमें मध्यकालीन संत श्री चैतन्य द्वारा जनजातीय क्षेत्र झारखंड की यात्रा का वर्णन है, जबकि उन्होंने वनों में रहने वाले कबीलाइयों को श्रीकृष्ण की महिमा से परिचित करवाया। पहले पांच अध्यायों में उन्होंने यह बताया है कि वनों में निवास करनेवाली जनजातियों का मैदानों में रहनेवाले लोगों के साथ वर्ण-जाति-व्यवस्था के अंतर्गत धीरे-धीरे किस तरह एकीकरण होता जा रहा है, जिसका आधार अप्रतिस्पर्धी रूप से जीविका कमाने की विभिन्न गतिविधियां हैं। उनके पश्चात जाति-व्यवस्था को एक आदर्श शाब्दिक प्रतिमानों के संचालन के ढांचे में प्रस्तुत किया गया है, और प्राचीन एवं मध्यकालीन युग में हुए क्रियात्मक संशोधनों का भी उल्लेख किया गया है। अंत में उन्होंने इस बात पर विचार किया है कि जाति-व्यवस्था किस प्रकार पूंजीवादी औद्योगिक सामंतशाही शासन के कारण बुरी तरह अस्त-व्यस्त हुई। उदाहरणस्वरूप ब्रिटिश काल में हुए परिवर्तन की प्रक्रिया को समझाने के लिए वह श्रीरामपुर के सिन्हा परिवार के उदय, बोलपुर में नगरीय जीवन के विकास और जाजी ग्राम जैसे परंपरागत गांव में हुए परिवर्तनों को प्रस्तुत करते हैं। उसके पश्चात बोस ने वंशानुगत जातीय व्यवस्थाओं के विघटन और निम्न जातियों में वर्ण-व्यवस्था के अंतर्गत जो सामाजिक गतिशीलता की प्रवृत्ति पाई जाती थी, उसके भंग होने पर हुए और होनेवाले प्रभावों पर विचार किया है। अपने निबंध को वह निम्नलिखित टिप्पणियों से समाप्त करते हैं—

''जिस ऐतिहासिक स्थिति में सनातन जाति-व्यवस्था स्थापित हुई, वह आधुनिक काल में दोहराई नहीं जायेगी। वह हमारे समय के अनुकूल भी नहीं होगी, क्योंकि भारत की आबादी बहुत अधिक बढ़ गई है और प्रति व्यक्ति उपलब्ध भूमि काफी कम हो गई है। फिर भी अगर परंपरागत पद्धति में हमें कुछ मूल्य और सामाजिक उद्देश्य, जो कि आधुनिक समय के लिए प्रासंगिक हो सकते हैं, प्राप्त होते हैं, तो समकालीन समस्याओं को सुलझाने में उनका प्रयोग न करना नासमझी होगी, क्योंकि अंतिम निष्कर्ष में मानवजाति को समय तथा अंतर के आधार पर अलग नहीं रखा जा सकता।''[26]

बोस सामाजिक सोपान तथा जाति-व्यवस्था में अस्पृश्यता की धारणा के आलोचक थे। उस सीमा में उस पद्धति की कल्पनाशील संरचना के प्रति प्रशंसा सभी जातीय गुटों की संस्कृति की सुरक्षा का आश्वासन प्रदान करते हुए उन्हें प्रतिस्पर्धारहित अवलोकन के सामान्य आर्थिक सूत्र के समाकलित करती थी। उपरोक्त व्यवस्था में समाज व्यक्ति के ऊपर था, परंतु व्यक्ति को संन्यासी बनने की स्थिति में पूर्ण सम्मान तथा स्वतंत्रता प्राप्त थी, क्योंकि संन्यास ले लेने से व्यक्ति जाति-व्यवस्था के सोपान-क्रम के प्रतिमानों से अलग हो जाता था।

बोस को चिंता थी कि वह सामाजिक संघटन, जिसने भारतीय सभ्यता को हजारों वर्षों से पोषित किया था, अब टूट रहा है, जैसा कि अनिवार्य है, परंतु उसका स्थान लेने के लिए एक नयी और प्रभावशाली सामाजिक पद्धति के निर्माण का, जो समानता, सहयोग तथा सहिष्णुता की प्रवृत्ति पर आधारित हो, कोई भी प्रयत्न नहीं किया जा रहा है। बोस का विचार था कि अधिकतर भारतीय बुद्धिवादी और राजनीतिक नेता सामाजिक परिवर्तन की योजनाएं बनाते तो हैं, परंतु वे सामाजिक वास्तविकता को गहराई से बिना समझे तथा जन-प्रतिभा और सभ्यता पर बिना कोई ध्यान दिये ऐसा करते हैं।

'नवीन और प्राचीन' में प्रस्तुत अपनी लेखमाला और गांधी के विचारों, व्यक्तित्व और क्रियाओं के अध्ययन में हमें बोस द्वारा आधुनिक भारतीय सामाजिक जीवन को पुनर्गठित करने के लिए विचारों और प्रक्रियाओं के लिए की जा रही एक अनवरत खोज दिखाई देती है।

7

गांधी के साथ बिताये दिन

बोस को 1945 में दमदम जेल से रिहा किया गया और उन्होंने मानव विज्ञान विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय में अपने पुराने उप व्याख्याता पद पर काम करना आरंभ कर दिया। अगस्त, 1946 में उन्हें प्रोफेसर एस.पी. चटर्जी ने, जो भूगोल विभाग के अध्यक्ष थे, भूगोल विभाग में आने का निमंत्रण दिया और उन्होंने स्नातकोत्तर कक्षाओं में मानवीय भूगोल पढ़ाना आरंभ कर दिया।

जेल से छूटने के तत्काल बाद 3 अक्तूबर, 1945 को निर्मल बोस को खुर्शीद बेग से एक पत्र मिला कि गांधीजी शीघ्र ही बंगाल में भारत छोड़ो आंदोलन के स्वरूप के बारे में पूछताछ करने के लिए कलकत्ता आयेंगे। खुर्शीद चाहती थी कि निर्मल बोस गांधी से मिलें और उनके साथ कुछ समय तक रहें।

गांधीजी दिसंबर, 1945 के पहले सप्ताह में कलकत्ता आये और सतीश दासगुप्ता के साथ खादी प्रतिष्ठान आश्रम, सोदपुर में ठहरे। निर्मल बाबू गांधीजी से मिले और गांधीजी ने उन्हें बताया कि खुर्शीद ने उनसे कहा था कि वह निर्मल को सेवाग्राम में अपने आश्रम में ले आयें। बोस ने गांधीजी से कहा, "मैं पढ़ने-लिखने के लिए बनाया गया हूं, और अगर मैं सेवाग्राम में रहूं तो आपके अपने ही कार्यकर्ता सोचेंगे कि यह आदमी कोई काम नहीं करता, केवल किताबों में उलझा रहता है, और मैं सोचूंगा कि ये आदमी सिवाय सूत कातने के और कुछ नहीं करते।" गांधीजी इस पर दिल खोलकर हंसे और बोले कि इस पर कुछ समय सोचो और मुझसे कल मिलो। अपनी दूसरी मुलाकात में गांधीजी ने बोस से कहा कि क्योंकि बोस उनकी लेखनी का केवल वर्गीकरण ही नहीं कर रहे, बल्कि उनकी विश्लेषणात्मक व्याख्या भी कर रहे हैं, इसलिए अगर वह उनको वास्तव में काम करते देखेंगे और केवल उनकी लेखनी पर ही निर्भर नहीं रहेंगे तो उन्हें उनको समझने में अधिक सहायता मिलेगी। गांधीजी जिस निर्लिप्त ढंग से अपने जीवन, अपनी आकांक्षाओं और अपनी उपलब्धियों के विषय में बात करते थे और अपने दैनिक जीवन के ताने-बाने में जितना आदर्शवाद बुन पाते थे, बोस उससे बहुत प्रभावित हुए।

5 और 6 जनवरी, 1946 को बंगाल के विभिन्न भागों से आये हुए करीब सात सौ से अधिक कांग्रेसी कार्यकर्ता तथा कुछ पत्रकार खादी प्रतिष्टान सोदपुर में एकत्रित हुए। वे गांधीजी के साथ विभिन्न राजनीतिक तथा संबंधित सामाजिक समस्याओं पर विचार-विमर्श करना चाहते थे। सतीश दासगुप्ता ने निर्मल बोस को अनेक आगंतुकों द्वारा उठाये गये प्रश्नों को देखने और उन्हें गांधीजी को देने से पहले उन्हें एक अनुक्रम में लगाने का कार्य सौंपा। निर्मल बाबू ने अपना कार्य अपने स्वाभाविक नियमनिष्ट तरीके से किया। इससे बोस को गांधीजी की ट्रस्टीशिप की अवधारणा को लेकर उनसे कुछ स्पष्टीकरण मांगने का अवसर मिला। बोस ने गांधी को लिखा—

''बापूजी, कल आपने विरासत प्राप्त न्यासी की संपत्ति के संबंध में जो अंतर किया, उससे मैं संतुष्ट नहीं हूं, और उस बारे में मेरे आप से मतभेद हैं... आपने सही कहा है कि न्यासी की एकमात्र उत्तराधिकारी जनता है और किसी व्यक्ति के देहांत पर उसकी संपत्ति समाज को क्यों न उपलब्ध हो?... व्यक्तिगत रूप में मेरा विश्वास है कि संपत्ति राज्य की होनी चाहिए, इससे भी बेहतर है अगर वह किसी स्वैच्छिक संगठन के नियंत्रण में हो, जैसे ग्राम पंचायत अथवा नगरपालिका या अखिल भारतीय स्पिनर्स संगठन (बुनकरों का संगठन), जो कि सामूहिक रूप से केवल जन-कल्याण के लिए संचालित किया जाता है, मुनाफे के लिए नहीं...''[27]

गांधीजी ने रुचि से वह पत्र पढ़ा और कहा कि इस विषय पर भविष्य में यथासमय उत्तर देंगे। कई महीनों बाद ऐसा अवसर आया जबकि निर्मल बोस गांधीजी की नोआखाली तीर्थयात्रा पर उनके व्यक्तिगत सचिव तथा बंगला दुभाषिये के रूप में उनके साथ गये।

अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक स्थिति में नाटकीय परिवर्तन आने लगे। जर्मनी ने मई, 1945 में मित्र राष्ट्रों के सामने हथियार डाल दिये। हिरोशिमा और नागासाकी पर अगस्त, 1945 में अणुबम का प्रयोग किया गया, जिसके बाद जापान ने भी आत्मसमर्पण कर दिया।

युद्ध-समाप्ति पर आजाद हिंद फौज में भारतीय युद्ध बंदियों का सुभाष बोस ने जिस वीरता से सैन्य संगठन किया था, उसकी सूचना मिली। भारतीय उपमहाद्वीप की जनता एक राष्ट्र के रूप में स्वतंत्रता प्राप्त करने को उतावली हो रही थी। बिहार में सशस्त्र पुलिस के सिपाहियों ने और बंबई में रायल इंडियन नेवी के जवानों ने फरवरी, 1946 में विद्रोह कर दिया। हड़तालों और प्रदर्शनों का एक सिलसिला पूरे भारत-भर में छा गया।

ब्रिटिश सरकार समझ गयी कि अब सत्ता-हस्तांतरण के सिवा और कोई विकल्प नहीं है और एक मंत्रिमंडल मिशन भारत भेजा गया। कांग्रेस और अन्य

दलों के साथ लंबे विचार-विमर्श के बाद मिशन ने अपनी योजना प्रस्तुत की, जिसे कांग्रेस और मुस्लिम लीग, दोनों ने स्वीकार किया। परंतु जब वायसराय लार्ड वेवेल ने 12 अगस्त, 1946 को पंडित नेहरू को अस्थायी सरकार बनाने का निमंत्रण दिया, तो मुस्लिम लीग ने इसमें सहयोग न देने का निर्णय किया। जिन्ना ने 14 अगस्त, 1946 को सीधी कार्यवाही दिवस (Direct Action Day) मनाने की घोषणा की और कलकत्ता में चार दिन तक व्यापक सांप्रदायिक फसाद हुए।

कलकत्ता में इस भयानक हत्याकांड से निर्मल बोस बहुत विचलित हुए। उन्होंने मित्रों के साथ मिलकर एक दल बनाया और स्थानीय हिंदू और मुस्लिम परिवारों को बचाने और उन्हें सुरक्षित स्थानों पर ले जाने का कार्य किया।

जब कलकत्ता में सांप्रदायिक दंगे कुछ शांत हुए तो 10 अक्तूबर, 1946 को पूर्वी बंगाल में नोआखाली जिले के मुस्लिम नेताओं ने वहां की अल्पसंख्यक हिंदू जनता पर अचानक हमला किया। प्रथम सूचना 17 अक्तूबर को ही मिली। सतीश दासगुप्ता को उसके बाद शीघ्र ही दिल्ली से गांधीजी का तार मिला, जिसमें यह ताकीद की गई थी कि वह स्वयंसेवकों का एक दल तत्काल नोआखाली भेजें, जिससे कि वहां के सही हालात पता लग सकें।

सतीश बाबू ने निर्मल बोस को बताया कि गांधीजी कुछ दिनों में सोदपुर आनेवाले हैं। बोस को यह काम सौंपा गया कि वे सभी प्रासंगिक पत्र व दस्तावेज पढ़कर बंगाल की मुस्लिम लीग सरकार के विरुद्ध हिंदू-मुस्लिम दंगों के संबंध में एक प्रामाणिक प्रतिवेदन तैयार करें।

गांधीजी 29 अक्तूबर, 1946 को सोदपुर पहुंचे। बोस को निर्देश दिया गया कि वे कलकत्ता के विभिन्न शिविरों में नोआखाली से आये शरणार्थियों से भेंट करें। इन भेंटों का संक्षिप्त विवरण हर रोज गांधीजी के सामने रखा जाता था।

गांधीजी सोदपुर से नोआख़ाली के लिए 6 नवंबर, 1946 को रवाना हुए। उनके कहने पर निर्मल बोस 17 नवंबर को नोआखाली के जिरकिल शिविर में पहुंचे। वे दूसरे दिन सोमवार की सुबह गांधीजी से मिले और गांधीजी उस दिन मौन व्रत किया करते थे। गांधीजी ने एक कागज के पुर्जे पर लिखा—

''मैं यह चाहता हूं कि—तुम अगर ऐसा कर सकते हो और चाहते हो तो—मैं बंगाल में जहां भी जाऊं और रहूं, तुम मेरे साथ रहो। इसके पीछे विचार यह है कि मैं तुम्हारे साथ अकेला रहूं और तुम मेरे साथी और दुभाषिया बनो। तुम ऐसा तभी कर सकते हो, अगर तुम विश्वविद्यालय से अपना नाता तोड़ लो और मृत्यु, भूख इत्यादि का सामना करने को तैयार रहो। सतीश बाबू मेरी योजना के बारे में सब जानते हैं। तुम उनसे पूछ लो।''[28]

बोस ने उसे पढ़ा और उत्तर दिया—

"आप जब तक बंगाल में हैं, आपकी सेवा के लिए विश्वविद्यालय मुझे मुक्त करता है। बाकी मैं यही कह सकता हूं कि मैं आपकी शर्तों को पूरा करने का पूरा प्रयत्न करूंगा, इससे आगे मैं कदाचित ही कुछ कह सकता हूं।"[29]

बाद में बोस ने गांधीजी को लिखा—

"अब जब आपने मुझे अपने साथ रहने के लिए कहा है, यह आवश्यक है कि मैं अपनी सीमाएं आपको बता दूं, जिससे भविष्य में आप को मुझ से कोई निराशा न हो।"

"व्यक्तिगत रूप से मैंने कभी प्रार्थना नहीं की, परंतु अपने निजी जीवन में मैं अक्सर उन छोटे-छोटे कार्यों को भी उन चीजों से जोड़ने का प्रयत्न करता हूं, जो मुझे प्रिय हैं। अगर कोई चीज बाधा बनकर मेरे मार्ग में आती है तो उसे पूरे होश के साथ उखाड़ देता हूं, परंतु यह किसी भी रूप में प्रार्थना नहीं मानी जा सकती... इसलिए अगर मैं आपके साथ श्रीरामपुर में रहूंगा तो सामूहिक प्रार्थना के लिए कुछ व्यवस्था करनी पड़ेगी।"[30]

गांधीजी ने पत्र पढ़ा और निर्मल बाबू से कहा कि इसमें उन्हें कुछ भी आपत्तिजनक नहीं लगा। उन्होंने कहा कि अगर भविष्य में कोई अवसर आया तो इस पर वह उनसे बात करेंगे।

श्रीरामपुर में अपने आवास के दौरान गांधीजी ने बोस से एक बार पूछा कि क्या वे ईश्वर में बिल्कुल विश्वास नहीं करते। बोस ने उत्तर दिया—

"मैं स्वीकार करता हूं कि मैंने कभी इस समस्या पर गंभीरतापूर्वक विचार नहीं किया कि ईश्वर है कि नहीं और विश्व के अस्तित्व के पीछे प्रमुख कारण क्या है। मैं इस प्रकार के तत्वात्मक प्रश्नों के संबंध में सोचता ही नहीं।"[31]

गांधीजी ने उनसे पूछा कि क्या वे किसी में विश्वास करते हैं? बोस ने उत्तर दिया—

"अवश्य, एक वैज्ञानिक के रूप में मैं सत्य में विश्वास करता हूं। प्रयोगशाला में अन्वेषण के आधार पर अथवा अपने वैज्ञानिक अन्वेषण के आधार पर हम सत्य को पर्यवेक्षण तथा प्रयोग से खोजने का प्रयत्न करते हैं। अगर हम किसी में विश्वास न करें और उसके लिए संघर्ष करना उचित न समझें तो फिर इस सारी भागदौड़ में उलझें ही क्यों।"

गांधीजी ने कहा, "यह पर्याप्त है।"[32]

प्रोफेसर बोस के साथ मेरा संपर्क एक युवा मानव वैज्ञानिक के रूप में बीस वर्ष से ज्यादा का रहा है और मैंने कई बार अनुभव किया है कि वह स्वयं को एक वैज्ञानिक के रूप में प्रस्तुत करने के विचार से काफी अभिभूत थे। वे कुछ विशिष्ट संन्यासियों की मानसिक व्यवस्था में बहुत रुचि रखते थे, जो स्वयं को भौतिक और

सामाजिक जीवन की सुरक्षा से अलग होने का साहस करते हैं। 'परिब्राजकेर डायरी' में एक संन्यासी के बारे में बोस ने लिखा है कि वे मंदिरों के अध्ययन के दौरान हिमालय क्षेत्र में पठानकोट जिले के एक गांव में पहुंचे। वह सुबह जल्दी उठे और एक पहाड़ी झरने पर गये। वहां उन्होंने एक संन्यासी को मृत पाया। गांववालों से उन्हें पता चला कि दो सप्ताह पहले वह संन्यासी गांव में पहुंचे थे। वह बीमार और बूढ़े थे। गांव वाले उनके आराम, भोजन आदि का इंतजाम करना चाहते थे, परंतु उन्होंने गांव वालों से कहा कि उनका शरीर प्राय: जर्जर है और अब इससे कोई भी उचित उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी। इसलिए उन्होंने अपने शरीर को त्यागने का निर्णय किया है। फिर भी गांव वाले उनके लिए दूध और अन्य खाद्य सामग्री लेकर गये, परंतु उन्होंने कुछ भी ग्रहण करने से इंकार किया और उस झरने के किनारे अपना शरीर छोड़ दिया। बोस लिखते हैं—

"मैं पठियान छोड़कर दूसरे गांव की तरफ चल दिया। परंतु उस संन्यासी का खयाल बार-बार मेरे मन में आता रहा। ऐसे व्यक्ति के प्रति श्रद्धा पैदा होना स्वाभाविक है जो इतना मनोबल रखता हो और यह निर्णय-क्षमता भी कि उसका शरीर अब थक चुका है और उसे त्यागने का समय आ गया है।"[33]

मैंने पहले लिखा है कि 17 से 21 वर्ष की आयु में लिखी अपनी व्यक्तिगत टिप्पणियों में बोस ने किस प्रकार व्यक्ति को पूरे ब्रह्मांड में व्याप्त विश्वशक्ति का ही एक अंश माना और उसके प्रति अपनी गहरी आस्था व्यक्त की थी। 1920 के अंत में कुछ महीने उन्होंने एक अनोखे बंगला संन्यासी के आश्रम में बिताये थे, जिनका नाम तिब्बती बाबा था। संन्यासी की आदतों, सादगी और अन्वेषक बुद्धि ने बोस को आकर्षित किया था। निर्मल बुद्ध के भारी प्रशंसक थे और शायद उनके मन में बुद्ध की विवेकशील खोजवृत्ति और संवेदनशीलता के प्रति जो श्रद्धा-भाव था, वह तिब्बती बाबा के संपर्क से पैदा हुआ था।

अब हम वापस गांधी-शिविर में लौटें। दिखाई यह देता है कि रोजमर्रा वाले काम के दबाव के बावजूद बोस ने बराबर डायरी लिखी, जैसे कि अपने क्षेत्र में काम करनेवाला एक मानव वैज्ञानिक किया करता है। बोस ने बराबर नोआखाली और बाद में पटना और कलकत्ता आवास के दौरान डायरी रखी है। वे गांधीजी द्वारा प्रतिदिन अपनी प्रार्थनासभा में दिये गये भाषणों को संक्षिप्त करके स्थानीय प्रेस-प्रतिनिधि के जरिये तार द्वारा कलकत्ता भिजवा देते थे।

30 नवंबर, 1946 को श्रीरामपुर के शिविर में गांधीजी ने निर्मल बोस से पूछा कि वह किस प्रकार अहिंसात्मक और रचनात्मक कार्यक्रम के प्रति आकर्षित हुए। बोस लिखते हैं—

"मैंने उन्हें बोलपुर में अपने रचनात्मक कार्य के संबंध में बताया कि किस प्रकार मैं यदा-कदा राजनीतिक आंदोलनों में भी सम्मिलित होता रहा हूं। मैंने उन्हें यह भी

बताया कि किस प्रकार वैज्ञानिक अन्वेषण मेरा वास्तविक स्वधर्म है, और राजनीतिक आंदोलन में भाग लेना—भले ही वह केवल बौद्धिक रूप में हो—एक आकस्मिक कर्तव्य के सिवा कुछ भी नहीं है।''

इस पर गांधीजी ने उनसे कहा—

''जो मैंने लिखा तुम वह सब पी गये हो परंतु यह आवश्यक है कि तुम मुझे कार्य करते देखो, जिससे तुम मुझे बेहतर समझ सको तुम्हें ध्यान से देखना पड़ेगा कि क्या मैं स्वहित से प्रेरित हुआ हूं।''[34]

गांधीजी श्रीरामपुर शिविर में 43 दिनों तक रहे और बोस ने अपनी पुस्तक 'गांधी के साथ मेरे कुछ दिन' (1953) के दसवें अध्याय में उनकी दिनचर्या का सजीव वर्णन किया है, जिसका शीर्षक है 'रोज का कार्यक्रम'। उन्हें गांधीजी की आवश्यकताओं की पूर्ति और उनकी देखभाल करनी पड़ती; मसलन दातुन बनाना, सुबह का खाना तैयार करना, बांग्ला सिखाना, उनके साथ सुबह घूमने जाना और नींबू के रस से मालिश के बाद नहाने की तैयारी करना। दोपहर 12 बजे गांधीजी कच्चे नारियल का रस पीते थे। 4.00 बजे की प्रार्थना-सभा से पहले 3.30 पर वे दिन का अंतिम भोजन करते थे। प्रार्थना के बाद गांधीजी अपने पत्रों और फाईलों का अध्ययन करते थे और 8.30 बजे सोने चले जाते थे। निर्मल बाबू देर रात तक जागकर सारी उपयोगी चिट्ठी-पत्री तथा दस्तावेजों को दूसरे दिन गांधीजी के लिए तैयार करते थे। और जैसा मैंने पहले ही कहा है कि वे क्षेत्र में काम करने वाले वैज्ञानिक की तरह डायरी भी अवश्य लिखते थे।

गांधीजी के आत्मनिष्ठ और सिद्धांतवादी आंदोलन के दौरान साथ रहनेवाले कई प्रतिष्ठित राष्ट्रीय नेता, जैसे पंडित नेहरू, आचार्य कृपलानी, शंकरराव देव, शरतचंद्र बोस और कई अन्य, सत्ता हस्तांतरण के अंतिम चरण के बारे में विचार-विमर्श करने तथा उनके विचार जानने के लिए नोआखाली आये।

मैं नहीं समझता कि विश्व में किसी अन्य मानव वैज्ञानिक को मानवीय इतिहास के इतने महत्वपूर्ण निर्णयों का सक्रिय तथा अनवरत प्रत्यक्षदर्शी होने और इतने जटिल परिप्रेक्ष्य में इतने मूलभूत मानवीय विषयों का परीक्षण करने का अवसर मिला हो!

इतनी व्यस्तता के बीच भी गांधीजी ने बोस की पुस्तक 'सिलेक्शंस फ्राम गांधी' (Selections from Gandhi) के संशोधित संस्करण की पांडुलिपि को पढ़ा और उन्होंने उसकी प्रस्तावना भी लिखी—

''निम्नलिखित पृष्ठ बोस के श्रम के प्रतीक हैं। प्रोफेसर निर्मल कुमार बोस ने अपने चयन का प्रकाशन सर्वप्रथम 1934 में किया था और उसमें 1934 तक मेरे लेखन में से उद्धरण लिये गये थे। परंतु मेरा लिखना कभी समाप्त नहीं हुआ और इसलिए प्रोफेसर को यह उचित लगा कि वह अपने चयन को जितना आगे ले आयें, उतना अच्छा

है अपनी पांडुलिपि उन्होंने मुझे 1946 के आरंभ में दी थी—जब मैं बंगाल में था—कि मैं जो चाहूं करूं लेखक द्वारा किये गये चयन से यह स्पष्ट है कि उसने अपने विषय का कितना गहरा अध्ययन किया है ''[35]

गांधीजी के साथ नोआखाली में अपने इतने निकट संपर्क के दौरान निर्मल बाबू ने देखा कि उनकी कुछ शिष्याएं गांधी पर भावनात्मक रूप से आसक्त थीं और कभी-कभी उन पर इतनी निर्भर हो जाती थीं कि उनके कार्यक्रम में विघ्न पैदा कर देती थीं। बोस को लगा कि गांधी जैसे व्यक्ति अपनी कुछ महिला श्रद्धालुओं की निजी भावनात्मक समस्याओं को सुलझाने में अपना समय नष्ट नहीं कर सकते, विशेषकर जब वह अपनी सारी शक्ति को एक अधिक मानवीय मोड़ देने के लिए संघटित कर रहे हों। जब बोस को यह पता लगा कि गांधीजी की एक प्रतिष्ठित महिला अनुयायी ने, जो उस समय नोआखाली में एक दूसरे शिविर में ठहरी थी, उन्हें उपद्रवग्रस्त ग्रामों में पैदल घूमने के संकल्प से रोकना चाहा तो वह बहुत विचलित हुए।

जब बिहार में इस बार हिंदुओं द्वारा साम्प्रदायिक दंगे आरंभ करने की सूचना गांधीजी को मिली तो मार्च, 1947 के पहले सप्ताह में उन्होंने नोआखाली छोड़कर वहां जाने का निर्णय लिया। निर्मल बाबू भी गांधीजी के दल के साथ पटना तक गये, परंतु जब उन्हें लगा कि पटना के हिंदीभाषी क्षेत्र में गांधीजी को दुभाषिये की आवश्यकता नहीं है तो उनके पास करने को कुछ खास कार्य नहीं बचा। 11 मार्च, 1947 को निर्मल बाबू ने गांधीजी को सूचित किया कि पटना-शिविर के अपने उत्तरदायित्व से वे मार्च के अंत तक मुक्त होना चाहते हैं।

स्पष्टतया निर्मल बोस पटना स्थित गांधीजी के शिविर में जिस निष्क्रिय स्थिति में रह रहे थे, उससे वे कुछ अनमने हो गये थे। 18 मार्च की दोपहर को अचानक उन्होंने गांधीजी से मिलकर उनसे विदा लेने का निर्णय लिया। उन्होंने कहा, ''बापूजी, मैं जीवन पर्यंत इसी प्रकार भ्रमणशील रहा हूं।'' गांधीजी ने उन्हें आशीर्वाद दिया, परंतु कहा, ''तुमने अपना निर्णय बहुत जल्दबाजी में लिया है।'' बोस को लिखे हुए एक पत्र में गांधीजी ने फिर इस मामले पर बल दिया— ''तुम्हारे साथ रहने का मैं इतना अभ्यस्त हो गया हूं कि मुझे तुम्हारा अभाव अखरेगा मैंने तो केवल तुम्हारा ध्यान इस बात की तरफ आकर्षित किया है, क्योंकि तुम्हारा निर्णय जल्दबाजी में लिया गया है और वह भी इसलिए कि मैं तुम में जितनी संभव है, उतनी संपूर्णता देखना चाहता हूं जल्दबाजी में बहुत कुछ बर्बाद होता है।''[36]

मुझे लगता है कि गांधीजी ने निर्मल बाबू के व्यक्तित्व में प्रेरक हठी व्यवहार का सही मूल्यांकन किया था। परंतु निर्मल बोस ने अपने व्यवहार के पक्ष में जो सफाई दी है, वह भी प्रभावशाली है। उन्हें अनुभव हुआ कि वह अपना सब कुछ—वैज्ञानिक कार्य के प्रति अपने मोह को भी—त्याग आये थे, ताकि वे गांधीजी के नेतृत्व में अहिंसा के

क्षेत्र में एक अपूर्व अनुभव प्राप्त कर सकें। परंतु उन्हें लगा कि गांधीजी का अमूल्य समय अपने शिष्यों, विशेषकर शिष्याओं, की भावनात्मक नियति के प्रति बनी उनकी निरंतर चिंता से नष्ट हो रहा था।

बोस स्वयं भी जिस जल्दबाजी में उन्होंने गांधीजी के दल से अलग होने का निर्णय लिया था, उससे विचलित थे। विश्वविद्यालय वापस आने पर वे कुछ दिनों तक अकेले इधर से उधर घूमते रहे और निरंतर पिछले पांच महीनों में गांधीजी से जुड़े अपने समृद्ध अनुभवों के संबंध में सोचते रहे। उन्होंने अनुभव किया—

''गांधीजी कोई दूरस्थ नभमंडल में चमकते सितारे की तरह नहीं थे, जिससे मनुष्य अपना पथ निर्धारित करते हैं...वह एक विशाल बरगद की तरह थे, जो अपना सिर आसमान में ऊंचा उठाता है, साथ ही अपनी शाखाओं को हर दिशा में फैलाता है और उन शाखाओं से कुछ नई जड़ें निकालता है...धरती को एक बार फिर अपने आलिंगन में लेने के लिए। अपने दीन प्राणियों सहित धरती उनके लिए सत्य का उतना ही अंश थी, जितना अपनी बेदाग निर्मलता लिये हुए ऊंचा अम्बर।''[37]

इस अंतर्ज्ञानी सूक्ष्मदृष्टि ने उन्हें प्रेरित किया कि वे गांधीजी के चरित्राधार को गहराई से समझने का प्रयत्न करें। उन्होंने ध्यानपूर्वक गांधीजी के जीवन-इतिहास का अध्ययन किया, उनके व्यवहार पर अपने व्यक्तिगत निष्कर्षों का पुनरीक्षण किया और उनके चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी किया। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि गांधी के प्रयासों की एक महत्वपूर्ण और असाधारण विशेषता अपनी यौन-प्रवृत्ति को परिशुद्ध करने के लिए स्त्री को पुरुष की मां के रूप में देखकर उसके साथ एकात्मकता स्थापित करना रही है। गांधीजी का विश्वास था कि ''सभ्यता का विकास इस प्रयास में है कि मानव-जीवन और सामाजिक समस्याओं में उस जीवित आत्मवेदना का अधिकाधिक समावेश हो, जिसका प्रतिनिधित्व स्त्री अपने अस्तित्व में करती है।''

बोस ने गांधी की अहिंसक विचारधारा का जो मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया, उससे प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एरिक एरिक्सन आकर्षित हुए और उन्होंने अपनी पुस्तक 'Gandhi's Truth : On the Origin of Militant Non-Violence' (उग्रवादी अहिंसा की उत्पत्ति पर गांधी का सत्य) में लिखा—''यह पूरा प्रकरण, जिसे बोस ने इतने विशिष्ट ढंग से उस समय समझा था, गांधी के जीवन में मातृत्व-प्रसंग की निरंतर महत्ता को इंगित करता है। एक, पवित्र और संपूर्ण मां होने के नाते और दूसरा, जिसको इतने खुले रूप में स्वीकार नहीं किया गया, स्नेहपूर्ण आलिंगन में रहकर आश्वस्त होने की आवश्यकता—विशेषकर उनके असीम एकाकीपन के समक्ष।''[38]

निर्मल बोस पुन: 9 मई, 1947 को गांधीजी के बंगाल सोदपुर-आश्रम लौटने पर उनसे जा मिले। गांधीजी को बंगला दुभाषिये तथा विशेष सचिव के रूप में उनकी आवश्यकता थी। शरतचंद्र बोस और शाहिद सुहरावर्दी, जो उस समय बंगाल के प्रमुख थे, गांधीजी के पास एक संयुक्त, सार्वभौम बंगाल का प्रस्ताव लेकर आये। गांधीजी ने

सुहरावर्दी को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने कहा कि अगर वे हिंदू और मुस्लिम बंगालियों को अहिंसात्मक तरीकों से बंगाल में रखने को तैयार हों तो वे उनके अवैतनिक निजी सचिव बनकर तब तक उनके साथ रहने को तैयार हैं, जब तक हिंदू और मुस्लिम भाइयों की तरह रहने न लग जायें। बोस ने इस अनोखे पत्र को टाईप किया और सुहरावर्दी के निवास पर स्वयं पहुंचाया। सुहरावर्दी समझ नहीं पाये कि उस अनूठे प्रस्ताव का वह क्या करें!

गांधीजी को बिहार से फिर बुलावा आया और वे 15 से 24 मई, 1947 तक वहां रहे। इसके बाद 14 और 15 जून को होनेवाली अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की आपात बैठकों में भाग लेने के लिए दिल्ली रवाना हो गये। गांधी ने भारत विभाजन के प्रस्ताव का स्वयं समर्थन किया।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक के लगभग दो महीने बाद गांधीजी फिर कलकत्ता आये। बोस ने उनसे पूछा कि जब आप विभाजन के विषय में इतनी दृढ़ता से सोचते थे, तो आपने देश को आवश्यक नेतृत्व प्रदान क्यों नहीं किया। गांधीजी ने जवाब दिया कि अगर हर बार कांग्रेस गलती करे और हर बार उन्हें उसे सुधारना पड़े तो भारत कभी भी प्रजातंत्र की कला नहीं सीख पायेगा। लेकिन बोस को ऐसा लगा जैसे गांधीजी को कांग्रेस पर भरोसा नहीं था कि अपने मौजूदा रूप और आकार में वह उनके सामूहिक अहिंसा के साधन के रूप में काम कर सकेगी। संस्था को उन्होंने राह चलने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया।

बोस के अनुसार गांधीजी ने निवृत होने का निर्णय ले लिया था, क्योंकि वह सत्याग्रह की एक नयी योजना के लिए आधार तैयार करना चाहते थे, ताकि समय आने पर उसे आरंभ किया जा सके। कश्मीर की एक संक्षिप्त यात्रा और उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत में दंगाग्रस्त क्षेत्रों का दौरा करने के बाद अगस्त, 1947 के आरंभ में बंगाल की जनता ने 15 अगस्त से कुछ दिन पहले गांधीजी को वापस अपने बीच पाया। निर्मल बोस 9 अगस्त की सुबह-सुबह उनसे वर्धमान स्टेशन पर मिले। गांधीजी को प्रसन्नता थी कि निर्मल फिर उनसे आ मिले थे।

बोस हावड़ा स्टेशन से गांधी के साथ सोदपुर गये। कलकत्ता में फिर से भीषण दंगे आरंभ हो गये थे। पहल स्पष्टत: हिंदुओं ने की थी। गांधीजी खाली करा ली गई एक मुस्लिम बस्ती में रहना चाहते थे और स्थानीय हिंदुओं को इस बात पर राजी करना चाहते थे, कि वे मुसलमानों को अपने घर लौटने का निमंत्रण दें। 150, बेलियाघाट मेन रोड के एक खाली मुस्लिम घर में गांधीजी का शिविर लगाने का निर्णय किया गया।

यह भीषण तनाव का समय था और बोस हर पल गांधीजी के साथ रहते थे, जबकि स्थानीय हिंदुओं को वह धैर्यपूर्वक समझदारी के उपाय बताते थे, जिनमें मुख्य था शांति-सेनाओं की स्थापना। गांधीजी ने विभिन्न राजनीतिक दलों के हिंदू और मुस्लिम नेताओं के बीच जो अनेक बैठकें कीं, बोस सबमें उनके साथ थे।

सांप्रदायिक तनाव कुछ सीमा तक कम हुआ। परंतु बोस के अनुसार गांधीजी यह अनुभव कर रहे थे कि कांग्रेस पार्टी अब स्वराज निर्माण के लिए वह उचित साधन नहीं रही, जिसका मुख्य ध्येय राजनीतिक रूप से स्वतंत्र भारत में निर्धनों की स्थिति में सुधार करना हो।

7 सितंबर, 1947 को गांधीजी ने बेलियाघाट स्थित अपने निवास पर अंतिम प्रार्थना-सभा की। निर्मल बाबू उनके कमरे में गये, प्रणाम किया और उनसे विदा ली। यह उनकी अंतिम मुलाकात थी। गांधीजी दिल्ली के लिए रवाना हो गये।

परंतु गांधी—व्यक्ति, वातावरण, विचार और क्रिया—सभी रूपों में बोस के बौद्धिक और रचनात्मक अन्वेषण का स्थायी क्षेत्र बने रहे। उन्होंने इसे मानव वैज्ञानिक शोध का ही एक उचित और समृद्ध विषय समझा। परंतु वे इतने संवेदनशील थे कि उन्होंने एक पेचीदा मानवीय तथ्य को मानव विज्ञान के रूढ़िगत उपकरणों के सहारे नहीं जांचा और न विभिन्न विद्याओं के उपखंडों के अनुसार परखा।

अपनी पुस्तक 'गांधी के साथ मेरे कुछ दिन' (My Days with Gandhi) (1953) की प्रस्तावना में बोस ने लिखा है कि उन्होंने गांधी—व्यक्ति और उनके कार्य—का अध्ययन करने की कैसी योजना बनायी थी—

"बरसों पहले, मैंने गांधीजी पर चार पुस्तकें लिखने का निर्णय किया था। पहली पुस्तक उनके अंग्रेजी लेखन का संकलन होगा, जिसमें विभिन्न विषयों पर उनके विचारों का निचोड़ होगा; दूसरे ग्रंथ में उनके आर्थिक और राजनीतिक विचारों की रूपरेखा और उनके विकास का उल्लेख होगा; तीसरे में उनके व्यक्तित्व और विचारों को वास्तविक रूप से कार्यान्वित करने के उनके तरीकों का अध्ययन होगा, और चौथे में अलग-अलग समय पर भारतीय भूमि पर हुए विभिन्न सत्याग्रह आंदोलनों का आलोचनात्मक वर्णन होगा।"

"पहली दो पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं और तीसरी अब जनता के सामने रखी जा रही है। मैं नहीं जानता कि चौथी की योजना कभी पूरी होगी, हालांकि सत्याग्रह की पूर्ण संभावनाओं को समझने के लिए जबकि कितने ही सामान्यजन हिंसा के बजाय अहिंसा के अनुसार चलने का प्रयास करते हैं, किसी ऐसे ही आलोचनात्मक अध्ययन की आवश्यकता है, जैसे कि उच्च सेनाधिकारी किसी नये शस्त्र अथवा नयी रणनीति के प्रभाव का गहन अध्ययन करते हैं।"[39]

बोस ने अपनी आजीवन योजना के तीन ग्रंथ तो लिख लिये, परंतु 1971 में एक सांघातिक बीमारी के कारण चौथी पुस्तक लिखने की उनकी इच्छा पूरी न हो सकी।

8

मानवीय भूगोल में खोज यात्रा

18 मार्च, 1947 को पटना में गांधीजी के दल को छोड़ने के बाद निर्मल बाबू कलकत्ता विश्वविद्यालय के भूगोल विभाग में लौट आये। डाक्टर सेबती मित्र ने, जो कि 1946-1948 में प्रोफेसर बोस के स्नातकोत्तर शिष्य थे, मुझे बताया—

''निर्मल बाबू हमें मानवीय भूगोल पढ़ाते थे। उन्होंने हमें सीधी, सरल भाषा में अलग-अलग वातावरण में मानवीय रूपांतर की विविधता के बारे में सिखाया था। वे विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न लोगों के जीवन की वास्तविकताओं को विशिष्ट शब्दावली अथवा धारणाओं से बोझिल बनाये बिना उभारकर दिखाते थे। उनके द्वारा ब्लेक बोर्ड पर खींचे गये चित्र हमेशा स्पष्ट और परिशुद्ध हुआ करते थे। उनके व्याख्यानों अथवा चित्रों में किसी प्रकार की कोई अस्पष्टता या अनाड़ीपन नहीं झलकता था। हम में से बहुतों ने यह अनुभव किया कि हम लोगों को कुछ ही समय में मानवीय रूपांतरण-प्रक्रिया को काफी स्पष्टता तथा गहराई से समझने की अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई है।''

''उनके साथ कार्यक्षेत्र में काम करना भी एक विशिष्ट अनुभव था। जिस प्रकार वे हरेक वस्तु का निरीक्षण करते थे, स्थल और स्थिति में पूरी तरह डूब से जाते थे तथा स्थानीय प्राकृतिक वातावरण को समझते थे—इन सब बातों ने हम पर स्थायी प्रभाव छोड़ा। हमने उनका अनुसरण करके बहुत कुछ सीखा। वे हमें कहा करते थे : 'हम वातावरण से बहुत कुछ सीख सकते हैं, उसके पास हमारे लिए बहुत कुछ है।' उन्हें चिकित्सा के लिए जड़ी-बूटियां इकट्ठा करने का शौक था और हमेशा दांत साफ करने के लिए सब्जी के डंठलों का प्रयोग करते थे। उन्हें पेड़ों की परछाईं की लंबाई का निरीक्षण करके समय निर्धारित करना अच्छा लगता था।

''उनके मन में सभी प्रकार के लोगों के लिए बहुत संवेदनशीलता थी, भले ही दूसरे लोगों में कितनी भी कमजोरी क्यों न हो, उनमें किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को उसकी प्रकृति और क्षमता के अनुसार समझने की अनोखी शक्ति थी।''

बोस के कार्यक्षेत्र में काम करने की प्रशिक्षण-प्रणाली के बारे में उषा सेन ने कहा है—

"हम लोग निर्मल बाबू के साथ मैदानी प्रशिक्षण के लिए हजारीबाग गये थे। वे अपने माहौल को अपने तरीके से समझने के लिए कहते थे। दोपहर में जब हम शिविर में लौटते थे तो हममें से हरेक से हमारे सर्वेक्षण के बारे वह विचार-विमर्श करते थे। कभी हमें यह बताते थे कि उन्होंने किस प्रकार नदी के चक्रीय कटावों का अध्ययन किया, परंतु वे कभी किसी पर कुछ थोपते नहीं थे... मैंने यह भी देखा कि वे कीमती विदेशी औजारों के लिए लालायित होने को कभी प्रोत्साहित नहीं करते थे। उनका विचार था कि पहले हमें आसानी से उपलब्ध औजारों से काम करना सीखना चाहिए किसी भी प्राकृतिक इतिहासकार, भूगोलशास्त्री अथवा मानव वैज्ञानिक का मुख्य बल क्षेत्रीय स्थिति के अनुकूल हर वस्तु को बुद्धिमत्तापूर्वक सही और समग्र रूप से समझने पर होना चाहिए... जब हम प्रतिदिन क्षेत्रीय कार्य से शिविर लौटते थे तो देखते थे कि वे हमारे कमरों को साफ-सुथरा कर चुके होते थे। उनके कठोर, सिपाही जैसे बाहरी रूप के पीछे एक कोमल मां का हृदय था।"

वे नौजवान विद्वानों को जाति और कबीलाई उत्पत्ति के वातावरण और पारिस्थितिकी के संदर्भ में अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित करते थे। उनके प्रभाव से युवाओं की रुचि जाग्रत हुई और उन्होंने इस प्रकार के विषयों का अध्ययन किया—अंडमान द्वीप समूह में आदिम शिकारियों की उत्पादक और वितरणशील गतिविधियां, मुख्य द्वीप में बिरहोर-जैसे शिकारी और संचय करने वाले समूह, पशुचारी खानाबदोश, स्थानांतरित खेती (Shifting Cultivation) करने वाले किसान, कारीगर तथा मछेरे। कुछ दिनों बाद उन्होंने कुछ विद्वानों को शिकार, संचय तथा स्थानांतरित खेती के परिणामस्वरूप भूमि की भार-वहन क्षमता का अध्ययन करने को प्रोत्साहित किया। बोस चाहते थे कि मानवीय भूगोल और मानव विज्ञान के युवा विद्वान तथा शोधकर्ता इस विषय पर वास्तविक तथा परिणामात्मक ज्ञान प्राप्त करें कि भारत के विभिन्न भागों में रहने वाले विभिन्न वर्गों के लोग पृथक वातावरण और पोषण के विभिन्न स्तरों पर किस प्रकार जीवित रहते थे। साथ ही वे अलग-अलग, परंतु अन्योन्याश्रित और प्रतिस्पर्धी उत्पादन-व्यवस्थाओं—जैसे शिकार जमा करने, चल खेती तथा कृषि और औद्योगिक उत्पादन— के अंतर्गत किस प्रकार सह-अस्तित्व बनाये रखते थे। वे इस बात का परीक्षण करना चाहते थे कि क्या व्यापक औद्योगीकरण मौजूदा उत्पादक गतिविधियों के प्रभावशाली संयोजन से आम जनता की रोजगार और खाद्य संबंधी आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है या नहीं।

बोस हालांकि भूगोल विभाग से जुड़े थे, परंतु फिर भी मानव विज्ञान विभाग से उन्होंने निरंतर संबंध बनाये रखा। साथ ही वे राजनीति विज्ञान विभाग में समाजशास्त्र के अंशकालिक अध्यापक भी थे। गांधीवाद, स्थापत्य कला तथा इतिहास के विद्वानों के साथ भी उनका निकट संपर्क बना रहा।

मेरा उनके साथ पहला संपर्क जनवरी, 1950 में हुआ, जब प्रोफेसर बोस एम.एससी. कक्षाओं द्वारा सिंहभूम जिले में कोलहान क्षेत्र की 'हो' जनजाति पर क्षेत्रीय

रिपोर्टों से संबंधित मौखिक परीक्षा लेने मानव विज्ञान विभाग में आये थे। स्पष्ट था कि वे मेरी रिपोर्ट तथा पूछे गये प्रश्नों के मेरे द्वारा दिये गये उत्तरों से प्रसन्न थे। एक परीक्षक होने के बावजूद उन्होंने बिना कोई औपचारिकता दिखाये मुझसे कहा कि अगर बोस पाड़ा लेन स्थित उनके निवास पर मैं दूसरे दिन सुबह पहुंच सकूं तो इस विषय पर वे आगे बातचीत करना चाहेंगे।

उनके दो मंजिला मकान में अंदर बड़ा आंगन था। उनका अध्ययन-कक्ष सरल ढंग से सज्जित था। उसमें किताबें तरतीब से सजाई गई थीं और आसानी से निकाली जा सकती थीं। प्रोफेसर बोस ने मुझसे पूछा कि मैं सामाजिक रूपांतरण के मार्क्सवादी मार्ग और मानव विज्ञान के मूल मार्ग के अंतर को कैसे देखता हूं। कुछ विवाद के बाद उन्होंने मुझे अपनी राय दी, कहा कि मार्क्सवाद में सामाजिक परिवर्तन का आधार मूलत: तकनीक और अर्थव्यवस्था है, जबकि मानव विज्ञान सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन का अध्ययन सामाजिक, जैविक तथा सामाजिक-मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों के बदलते परिवेश के आधार पर करता है। मानव विज्ञान की सर्वाधिक मौलिक समस्या है, जैविक तथा सांस्कृतिक विकास के संबंध में खोजबीन करना। उन्होंने मुझसे मानव विज्ञान के इस प्रमुख विषय पर अपने तरीके से सोचने के लिए कहा।

प्रोफेसर बोस ने मुझसे फिर कहा कि चूंकि विश्वविद्यालय के परिणाम औपचारिक रूप से दो माह बाद ही घोषित किये जायेंगे, इसलिए मैं दोबारा कोलहान क्षेत्र की 'हो' जनजाति का अध्ययन करने को महीने-भर के लिए जा सकता हूं, और इस बार मुझे यह देखना चाहिए कि आर्थिक अन्योन्याश्रय के कारण 'हो' जनजाति उस क्षेत्र में बसी अन्य जातियों और जनजातियों से किस प्रकार पारस्परिक व्यवहार करती है।

मैं काफी उत्साहित हुआ। प्रोफेसर बोस ने मुझे पचास रुपये दिये, जो उन्हें शांतिनिकेतन में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय शांति सम्मेलन (1949) में आये एक प्रतिनिधि ने अपनी इच्छानुसार खर्च करने के लिए दिये थे।

फरवरी, 1950 में मैं सिंहभूम जिले के कोलहान क्षेत्र के भरभरिया गांव के लिए रवाना हुआ। एक सप्ताह क्षेत्र में रहने के बाद मैंने प्रोफेसर बोस को एक पत्र लिखा और उन्हें अपने कार्य की प्रगति की सूचना दी। जवाब में उन्होंने तत्काल बांग्ला में एक पोस्टकार्ड भेजा, जिस पर 14 फरवरी की तारीख थी—

"... मुझे तुम्हारा पत्र मिला... तुम अपने कार्य को अपनी सोच के अनुसार जारी रखो। तुम्हारे लौटने पर हम विचार-विमर्श करेंगे। जब तुम 'हो' जनजाति के भौगोलिक तथा जातीय परिवेश से संबंधित अध्ययन करो तो तुम्हें उनके आय-व्यय के बारे में विस्तृत सूचना एकत्रित करने की आवश्यकता नहीं। तुम्हें अपना ध्यान विशेष रूप से इन बातों पर रखना चाहिए कि 'हो' जनजाति कौन-सी वस्तु किस जाति-समूह से प्राप्त करती है, कौन-सी वस्तु किस गांव में बनाई जाती है और कुछ विशेष गांवों को उत्पादन के लिए क्यों चुना गया है। तुम्हें यह देखना चाहिए कि कौन-सी वस्तुएं साप्ताहिक हाट

पर किस गांव में आती हैं और कौन-सी जाति उन्हें लाती है, इत्यादि तुम्हें ध्यानपूर्वक देखना चाहिए कि किस प्रकार विभिन्न जातीय समूह आर्थिक अन्योन्याश्रय का एक सामान्य सूत्र बनाये हुए हैं। तुम्हें इस बात को भी नोट करना चाहिए कि 'हो' समाज पर इस आर्थिक निर्भरता का क्या सांस्कृतिक प्रभाव है। जब तुम 'हो' की सामाजिक संस्थाओं पर और अधिक सूचना एकत्रित करो तो इसका भी ध्यान रखना कि क्या उन संस्थाओं का कोई कार्य भी है। मुझे लगता है कि तुम्हारे लौटने पर जब 'हो' और अन्य जातियों के सामाजिक और आर्थिक निर्भरता के स्वरूप पर हमारा और अधिक विचार-विमर्श होगा, तो तुम्हें वास्तविकता की सही समझ अपने तरीके से होगी।''

मेरा आशीर्वाद और शुभेच्छाएं
निर्मल कुमार बसु

इस छोटे-से पोस्टकार्ड से स्पष्ट होता है कि प्रोफेसर बोस अपने विद्यार्थियों को किस प्रकार अपने तरीके से क्षेत्रीय पर्यवेक्षण के लिए प्रोत्साहित करते थे। वे केवल मौलिक दिशा-निर्देश देते थे और समय-समय पर उनकी खोजबीन की प्रगति में अपनी यथार्थ रुचि जताते थे। अंत में विचार-विमर्श के आधार पर वे हमें प्रोत्साहित करते थे कि हम स्वयं अपने निष्कर्षों पर पहुंचें।

'जर्नल आफ द ज्योग्राफिकल सोसाइटी आफ इंडिया' और 'मैन इन इंडिया' के संपादक के रूप में वे नये क्षेत्रीय पर्यवेक्षणों पर लिखने के लिए युवा विद्वानों को प्रोत्साहित करते थे। 1951 से 'मैन इन इंडिया' का संपादन, जो कि भारत में मानव विज्ञान की श्रेष्ठ और पहली व्यावसायिक पत्रिका थी और जिसे शरतचंद्र राय ने स्थापित किया था, उनकी प्रमुख तल्लीनता बन गया। इससे उन्हें नौजवान विद्वानों से संपर्क बनाने का अवसर भी मिलता था और समीक्षा के लिए नयी पुस्तकों को पढ़ने का अवसर भी मिलता था। साथ ही अपनी नई सैद्धांतिक और वैज्ञानिक सोच की अभिव्यक्ति का अवसर भी मिलता था। 'मैन इन इंडिया' के वे अपने अंतिम समय तक संपादक रहे।

ब्रिटिश शासन काल के अंतिम चरण में भारत सरकार द्वारा एक नये और प्रमुख शोध-संस्थान 'दि एंथ्रोपोलाजिकल सर्वे आफ इंडिया' की बनारस में स्थापना की गई। यह दिसंबर, 1945 था। 1947 में सर्वे को कलकत्ता के भारतीय म्यूजियम में स्थानांतरित कर दिया गया। देहली, लखनऊ, पुणे और उसमानिया विश्वविद्यालयों में मानव विज्ञान के नये शैक्षणिक विभागों की स्थापना की गई। बोस इंडियन साइंस कांग्रेस एसोसियेशन के वार्षिक अधिवेशनों में निरंतर जाते थे और मानव विज्ञान के क्षेत्र में सर्वे आफ इंडिया और विश्वविद्यालयों द्वारा विकसित नयी प्रवृत्तियों की पूरी खोज-खबर रखते थे। 1952 में उन्होंने 'मैन इन इंडिया' में 'भारतीय मानव विज्ञान में वर्तमान शोध-योजनाएं' की समीक्षा प्रकाशित की। यह समीक्षा एक प्रश्नावली के उत्तर में विभिन्न मानव विज्ञान विभागों से आये उत्तरों पर आधारित थी।[10] उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि अधिकतर संस्थाओं में कार्यरत भारतीय मानव वैज्ञानिक पश्चिम में तेजी से पनप रही नवीनतम

प्रवृत्ति अथवा सनक का अनुसरण करने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनका यह भी मत था कि अधिकतर भारतीय मानव वैज्ञानिक किसी विशेष क्षेत्र को अपना विशिष्ट क्षेत्र नहीं बना पाये हैं, जिसमें उन्होंने कोई विशेष साधन-प्रक्रिया अथवा उपागम या सैद्धांतिक रुचि का विकास किया हो।

उन्होंने यह बात अपने एक व्यापक सर्वेक्षण लेख में बल देकर कही, जो 'भारत में विज्ञान के पचास वर्ष : मानव विज्ञान तथा पुरातत्व विज्ञान की प्रगति' शीर्षक से उन्होंने 1963 में आयोजित इंडियन साइंस कांग्रेस एसोसियेशन के लिए लिखा था। उन्होंने लिखा—

"भारतीय मानव विज्ञान की स्थिति आमतौर पर, उन बातों के संबंध में जो समय-समय पर यूरोप अथवा अमेरिका में प्रभावशाली रहे हैं, उपनिवेशवादी रही है।"[41]

इससे पहले 1954 में उन्होंने एक लेख 'भारतीय मानव विज्ञान में शोध-योजनाओं के लिए कुछ सुझाव' प्रकाशित किया था, जिसमें उन्होंने सुझाव दिया था कि भारतीय मानव वैज्ञानिक ध्यानपूर्वक यह अध्ययन करें कि ग्रामीण भारत की अर्थव्यवस्था के लिए बनाई जा रही नयी योजनाएं मौजूदा सामाजिक अर्थव्यवस्थाओं के तथा जातीय और कबीलाई अधिरचना के भी किस प्रकार विरुद्ध हैं। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि गंभीर अध्ययन करने से स्पष्ट होगा कि परंपरागत व्यवस्था के अंतर्गत ऐसे औपचारिक तथा अनौपचारिक तत्व हैं, जिनका प्रयोग राष्ट्रीय पुनर्गठन के लिए लाभदायक रूप में किया जा सकता है। सामान्यत: यह देखा गया है कि बेहतर उत्पादन के तरीके कबीलों को अधिक संपन्न बना दें। परंतु कभी-कभी इसका परिणाम यह भी होता है कि दूसरे समूहों की अपेक्षा, जिनके साथ वह अभी तक एक व्यापक सामाजिक ढांचे के अंतर्गत एक पूरक जीवन व्यतीत कर रहे हैं, उनके सामाजिक स्तर में गिरावट आती है। बोस को उम्मीद थी कि भारतीय मानव वैज्ञानिक जब इस प्रकार के सांस्कृतिक संबंधों और इस प्रकार के अन्य अध्ययनों में जुटेंगे तो वह एक व्यापक दार्शनिक दृष्टिकोण और एक बृहत् उद्देश्य लेकर अपना काम करेंगे, जिससे भावी विश्व को लाभ हो सकेगा।[42]

बाद में जब बोस ने एंथ्रोपोलाजिकल सर्वे आफ इंडिया के निदेशक का कार्यभार संभाला तो उन्होंने अपने पांच वर्ष की अवधि का पूरा-पूरा लाभ उठाते हुए भारतीय मानव विज्ञान में एक उपनिवेशवादरहित शोध-परंपरा की संरचना का महान प्रयत्न किया। इस के संबंध में हम आगामी अध्याय में फिर बात करेंगे।

1949 में निर्मल बोस भारतीय साइंस कांग्रेस एसोसियेशन मानव विज्ञान और पुरातत्व विज्ञान खंड के अध्यक्ष चुने गये और उन्होंने 'भारतीय मंदिरों का कालांकन करने की पद्धतियों को सुधारने के सुझाव' शीर्षक एक उल्लेखनीय अध्यक्षीय भाषण दिया।[43] यह भाषण उत्तर, मध्य तथा पूर्वी भारत में उन्होंने मंदिरों की स्थापत्य कला का जो व्यापक सर्वेक्षण किया था, उस पर आधारित था। उन्होंने बताया कि किस प्रकार वास्तुशिल्पीय परिरूप और अनुपात के तत्वों का अंतराल में विसरण हो जाने से उनके कालांकन का

एक विश्वसनीय आधार उपलब्ध होता है और किस प्रकार विभिन्न इमारती तत्वों का अलग-अलग गति से विसरण होता है। बोस ने जो इतना व्यापक और विस्तृत सर्वेक्षण किया, जिसमें अत्यंत सावधानी से किये गये काम के अलावा कोई वैयक्तिक, अथवा आर्थिक भागीदारी नहीं थी और जो बौद्धिक, सामाजिक तथा राजनीतिक उत्तरदायित्वों के बावजूद किया गया था, वह निश्चय ही आश्चर्यजनक है। इस प्रकार के कार्य को करने के लिए आज विद्वानों को एक समूह और लाखों रुपयों के योजना-व्यय की आवश्यकता होगी।

धरणी सेन तथा गौतम शंकर रे के साथ बोस ने मयूरभंज क्षेत्र में प्रागैतिहासिक पुरातत्वीय सर्वेक्षण जारी रखे। गौतम शंकर रे को उन्होंने पुरातत्वीय धातु तकनीक (Lost wax) का अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित किया। यह प्रागैतिहासिक और आदिम ऐतिहासिक तकनीकी को समकालीन मानवजातीय अध्ययनों से जोड़ने के प्रयत्न का एक अंग था।

1954 तक निर्मल बोस भूगोल के प्राध्यापक के रूप में काम करते रहे, तत्पश्चात उन्हें रीडर के रूप में पदोन्नत किया गया। कलकत्ता विश्वविद्यालय में उन्हें कभी प्रोफेसर का पद नहीं दिया गया, परंतु जैसा पहले कहा जा चुका है, कलकत्ता के बुद्धिजीवियों में वह स्नेह से प्रोफेसर ही कहलाते थे। निर्मल कुमार बोस अपने आप में एक संस्था बन गये थे। 37, बोसपाड़ा लेन में उनके घर पर भारतविद्या, इतिहास और अन्य समाजशास्त्रों; भूविज्ञान, भूगोल, मनोविज्ञान, मानव विज्ञान, स्थापत्य, कला-इतिहास और शहरी योजना के क्षेत्र में विशिष्ट तथा नवयुवा विद्वानों से मुलाकात हो जाती थी। उनके मिलनेवालों में कलाकार, लेखक, राजनीतिज्ञ और राजनीति विचारक भी होते थे। वे कारीगरों और ग्रामीण क्षेत्र से अपने मित्रों को भी आमंत्रित करते थे। परंतु उनका बड़ा सा अध्ययन-कक्ष, बांग्ला में जिसे 'अड्डा' कहते हैं, वह कभी नहीं बना। उसका हर द्वार खुला था, परंतु वाद-विवाद निश्चित विषयों के इर्द-गिर्द ही होता था; और आनेवालों को यह भी मालूम था कि उन्हें कब जाना है, ताकि बोस को अपना काम करने का पर्याप्त समय मिल सके। परंतु उन्हें विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित लोगों को परस्पर मिलाने में अत्यंत आनंद आता था और आशा रहती थी कि वह एक-दूसरे से मिलकर एक-दूसरे पर रचनात्मक प्रभाव छोड़ सकेंगे।

दिसंबर, 1957 से जनवरी, 1958 तक प्रसिद्ध स्थापत्य वैज्ञानिक वी. गोर्डन चाईल्ड इंडियन साइंस कांग्रेस के विशेष निमंत्रण पर कलकत्ता में थे। निर्मल बोस ने कलकत्ता में आयोजित उनकी सभी व्याख्यान-सभाओं की अध्यक्षता की। प्रोफेसर चाईल्ड के असंबद्ध तथा पांडित्यपूर्ण प्रस्तुतीकरण का जिस प्रतिभाशाली ढंग से निर्मल बोस ने समाहार किया, वह एक प्रेरणादायक अनुभव था। गोर्डन चाईल्ड जब भारत से गये तो उनके मन में निर्मल बोस के लिए अपार श्रद्धा थी।

1957 से 1961 तक प्रोफेसर जे.बी.एस. हाल्डेन भारतीय सांख्यिकीय संस्थान से जुड़े थे। प्रोफेसर पी. महलनवोस ने, जो उस समय संस्थान के निदेशक थे, उन्हें बोस से परिचित कराया। हाल्डेन बोस की प्रतिभा और मौलिकता से बहुत प्रभावित हुए, विशेषकर उनके इस मत से कि जाति-व्यवस्था सामाजिक जीवविज्ञान तकनीक और अर्थव्यवस्था की समस्या है। बोस ने उन्हें अपनी पुस्तक 'कल्चरल एंथ्रोपोलाजी' का संशोधित संस्करण भेंट किया। हाल्डेन ने बहुत रुचि से उसे पढ़ा। मैंने पहले ही बताया है कि 1957 में आयोजित हक्सले स्मृति-भाषणमाला में उन्होंने बोस की शाब्दिक श्रेणियों का कितने कल्पनाशील ढंग से प्रयोग किया था।

बोस ने अपने एक शिष्य अजित रे को प्रोफेसर हाल्डेन को विस्तृत वंश-विषयक तथ्य दिखाने के लिए तैयार किया, जो उसने मानभूम जिले के शिकारी और शिकार इकट्ठा करनेवाले पहीरा कबीले तथा चल खेती-बाड़ी करनेवाली उड़िया जुआंग जनजाति की स्त्रियों के जननीय जीवन के संबंध में एकत्रित किये थे। प्रो. हाल्डेन अजित रे के तथ्यों की समग्रता से प्रभावित हुए और उसे और आगे शोध के लिए कुछ सुझाव भी दिये। बोस की पहल पर उड़ीसा सरकार ने 1962 में हाल्डेन को भुवनेश्वर में 'आनुवंशिक उत्पत्ति प्रयोगशाला' स्थापित करने का निमंत्रण दिया। अजित रे इस संस्था से जुड़ गया। बोस ने उसके कार्य से बराबर संपर्क बनाये रखा और हाल्डेन भी उसके कार्य में आजीवन पूरी रुचि लेते रहे। दिसंबर, 1964 में उनका देहांत हो गया।

1960 में हाल्डेन, डाबजेंस्की और बोस ने कलकत्ता में एक साथ बैठकर जीवविज्ञान पर भारतीय जाति-व्यवस्था के प्रभावों को लेकर विस्तृत विचार-विमर्श किया जो कि डाबजेंस्की के मत में मानव इतिहास में सबसे व्यापक सुजननिक प्रयोग था।

1964 में जब भुवनेश्वर में हाल्डेन का देहांत हुआ, तो बोस उनकी स्मृति में हुई अंतिम प्रार्थनासभा में सम्मिलित होने गये। हाल्डेन इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या का जैसा समर्थन करते थे, बोस उससे सहमत नहीं थे। विज्ञान के प्रति हाल्डेन की कटिबद्धता की शुद्धता तथा गुण, क्षेत्रीय पर्यवेक्षण को गणितीय कल्पनाओं के साथ जोड़ने की उनकी शक्ति, उनका स्वतंत्र मनोभाव और जन-कल्याण के प्रति उनकी चिंता—इन सबके प्रति बोस के मन में गहरी श्रद्धा थी। उनके देहांत से बोस ने भारत में एक ऐसा व्यक्ति खो दिया, जिससे वे बौद्धिक अन्वेषण के संबंध में खुली बातचीत कर सकते थे।

9

विदेश यात्राएं

विदेशों में बोस के कई मित्र और प्रशंसक थे। अपने नौजवान मित्र बंकिम मुखर्जी को उन्होंने वित्तीय सहायता दी थी, ताकि वे इंग्लैंड जाकर दंत-चिकित्सा में उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकें। परंतु लंबे अर्से तक वे स्वयं बाहर जाने के आकर्षण को टालते रहे। उन्हें लगता था कि सामाजिक इतिहासकार होने के नाते भारत में उनको इतना काम करना है कि विदेश जाने का उनके पास समय ही नहीं है। उन्हें अपने कई साथियों की तरह विदेश जाने के लिए विदेशी संस्थाओं से वित्तीय मदद लेने से भी चिढ़ थी।

1955 में शिकागो विश्वविद्यालय के जाने-माने मानव वैज्ञानिक राबर्ट रेडफील्ड भारतीय सभ्यता की सामाजिक संरचना पर शोध-संभावनाओं की, विशेषकर उड़ीसा क्षेत्र में छानबीन करने आये थे। मैंने उन्हें शिकागो में पहले ही बता दिया था कि अगर वह कलकत्ता आयें, तो निर्मल कुमार बोस से अवश्य मिलें। रेडफील्ड और उनकी पत्नी कुछ ही महीनों के लिए भारत आये थे। उन्होंने बोस के साथ मद्रास की यात्रा की और पश्चिम बंगाल के कुछ गांवों में भी गये। रेडफील्ड दंपत्ती को अपनी भारत-यात्रा अचानक समाप्त कर स्वदेश लौटना पड़ा, क्योंकि कलकत्ता के एक क्लिनिक में पता लगा कि राबर्ट रेडफील्ड को ल्यूकेमिया है। शिकागो पहुंचने पर जब वह कुछ स्वस्थ हुए तो मैंने निर्मल बोस के बारे में उनके विचार जानने चाहे। उन्होंने फौरन उत्तर दिया—

"वे एक विशिष्ट व्यक्ति हैं, जिनमें साहस और बुद्धि के साथ कल्पना-शक्ति भी है। वे एक मजेदार और विनोदप्रिय हमसफर हैं। मेरी इच्छा है कि वे उड़ीसा के मंदिरों की सामाजिक तथा सांस्कृतिक संरचना के संबंध में अपने गूढ़ ज्ञान को लिखित रूप दे दें। मंदिर स्थापत्य कला के विसरण की समस्या पर उनके इतने परिश्रम के बावजूद मैं गांधी और उनके आंदोलनों के अध्ययन करने के उनके मौलिक उपागम से भी गहरे तक प्रभावित हुआ हूं...."

जब मैंने अगस्त, 1956 में शिकागो छोड़ा तो रेडफील्ड ने निर्मल बोस के लिए एक अनुरोध किया कि वे एक शैक्षणिक वर्ष अमेरिका में बितायें। उन्हें आशा थी कि विभिन्न विषयों के बहुत-से अमेरिकी विद्वान उनसे मिलने और वैचारिक आदान-प्रदान में रुचि लेंगे।

कलकत्ता पहुंचते ही मैंने निर्मल बाबू से रेडफील्ड के प्रस्ताव पर बात की। अंततः वे साढ़े चार महीने शिकागो विश्वविद्यालय में और इतने ही दिनों के लिए कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले में अतिथि प्रोफेसर के रूप में जाने को राजी हो गये। इस दौरान उन्होंने निम्नलिखित विषयों पर भाषण दिये—भारतीय सभ्यता की सामाजिक व्यवस्था, आधुनिक भारत में जाति-परिवर्तन, आधुनिक बंगाल, मंदिर स्थापत्य कला तथा राष्ट्रवाद और गांधीवाद। शिकागो विश्वविद्यालय के दक्षिणी एशिया विभाग में पुस्तकालयाध्यक्ष, मोरीन पैटरसन ने बाद में मुझे बताया : "सुबह मैंने प्रोफेसर बोस को मानव विज्ञान विभाग में भाषण देते देखा, फिर थोड़ी देर बाद नये राष्ट्रों की समिति के सामने गांधी पर, और दोपहर में मंदिर स्थापत्य कला पर कला-विभाग में।"

प्रोफेसर बोस ने शिकागो के शहरीय भूगोल को समझने का पूरा प्रयत्न किया, कला संस्थान तथा औद्योगिक म्यूजियम देखा और एक ग्रामीण कृषि फार्म पर भी कुछ समय बिताया। कुछ वर्ष बाद मैंने शिकागो में उनके आवास के संबंध में जो सुना, उससे पता लगा कि निर्मल बोस अपने अमेरिकी सहयोगियों से बहुत सहज रूप में मिलते थे और उनके सामाजिक वातावरण, शैक्षिक-सांस्कृतिक अभिरुचियों तथा राजनीतिक विचारों को समझते थे। भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन पर बोलने के लिए मेडीसन स्थित विस्कांसन विश्वविद्यालय और एनआर्बर स्थित मिशिगन विश्वविद्यालय में बोस को निमंत्रित किया गया। वह भारत में अपने अनेक मित्रों को अपने अमरीकी अनुभवों पर बांग्ला में पत्र लिखा करते थे। उनमें से कुछ पत्र 1972 में 'विदेशेर चिट्ठी' शीर्षक से एक पुस्तिका-रूप में प्रकाशित हुए।

1957 में बोस ने अपनी एक भाषण-शृंखला बर्कले स्थित कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के साउथ एशिया अध्ययन केंद्र में प्रस्तुत की। बाद में, 1959 में यह भाषणमाला 'आधुनिक बंगाल' शीर्षक से एक पुस्तक-रूप में प्रकाशित की गई। इसके अंतिम अध्याय में वे अपने विचारों का समाहार इस प्रकार करते हैं—

"इस सारे संघर्ष और कभी-कभी साहित्य, कला, सामाजिक और राजनीतिक जीवन में इसके समांतर घटने वाली घटनाओं में हम देखते हैं कि मानवीय जीवन को एक नया गरिमामय आयाम प्राप्त हुआ है, जिससे कि वह पहले वंचित था। पुरातन कर्मकांड तथा पिछले कुछ वर्षों में एक शोषणकारी राजनीतिक व्यवस्था पर 'निरोधक दबाव के कारण'... जीवन के अनेक बंधनों से मुक्ति के स्वस्थ चिह्न हमें स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। किंतु यह स्वतंत्रता हरेक तक नहीं पहुंची है... और क्योंकि पुरातन रूढ़ियां अभी भी बंगला जीवन में बनी हुई हैं, स्वाभाविक है कि राजनीतिक-सामाजिक विचारधारा तथा कला में वह प्रवृत्तियां उभरी हैं, जिनकी प्रमुख पहचान विद्रोह है, नव-निर्माण नहीं।"[44]

बोस ने स्टैनफर्ड, कैलिफोर्निया स्थित सेंटर फार एडवांस्ड स्टडीज में आयोजित एक अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में भाग लिया, जिसका विषय था—'सभ्यताओं का तुलनात्मक

अध्ययन' यह संगोष्ठी 10 मार्च, 1958 को आयोजित की गई, और इसका निर्देशन संयुक्त रूप से प्रोफेसर ए.एल. क्रयोबर तथा राबर्ट रेडफील्ड ने किया। बोस ने 'बंगाल में पूर्व तथा पश्चिम' विषय पर एक पत्र प्रस्तुत किया। क्रयोबर ने विशेष रूप से बोस के सैद्धांतिक दृष्टिकोण को पसंद किया, जहां उन्होंने कहा कि "किसी सभ्यता का अस्तित्व ही उस की विशेषता नहीं, बल्कि उसका सुखद बनना ही उसकी विशिष्टता है।" क्रयोबर ने मत व्यक्त किया— "पूर्व और पश्चिम के संबंध में जो मुझे (आपके भाषण से) पता लगा है, पश्चिम का प्रभाव पूर्व पर वैसा नहीं है जैसा कि हम पश्चिमवाले सहज भाव से मानते हैं कि वह हमने पैदा किया है। प्रश्न यह है कि हमने कितना दिया और कहां तक दिया—दरअसल पश्चिम का प्रभाव बंगाल पर एक उत्प्रेरक के रूप में हुआ है... नई रेखाओं, नये क्षेत्रों और नये नमूने पर उसमें एक स्वदेशी तत्व का ही विकास हुआ है।"[45]

जून, 1958 में बोस अमेरिका से कलकत्ता लौटे। वापस आते हुए वे रास्ते में जापान में टोकियो और हिरोशिमा, जावा, कंबोडिया तथा बैंकाक रुकते हुए आये। प्रत्येक स्थान पर उन्होंने कई तस्वीरें उतारीं और सामग्री संचित की, ताकि वे पूर्वी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया के मंदिरों से भारतीय मंदिरों की तुलना कर सकें।

1965 में बोस को फिर से अमेरिका आने का निमंत्रण मिल गया। भारतीय प्रतिनिधि के रूप में उन्हें एसोसियेशन फार एशियन स्टडीज के वार्षिक सम्मेलन में न्यूयार्क में आमंत्रित किया गया था। उन्होंने कोलंबिया विश्वविद्यालय और न्यूयार्क राज्य विश्वविद्यालय न्यूयार्क; मिशिगन विश्वविद्यालय, एनआर्बर; ड्यूक विश्वविद्यालय, नार्थ केरोलीना और हार्वर्ड विश्वविद्यालय, वाशिंगटन डी.सी. में आधुनिक भारत में सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन तथा महात्मा गांधी के राजनीतिक दर्शन पर कई भाषण दिये। उन्होंने लगभग दो सप्ताह मैक्सिको नगर में भी बिताये, जहां उन्हें भारतीय समाजों और संस्कृतियों पर भाषण देने के लिए एशिया अध्ययन विभाग में मैक्सिको विश्वविद्यालय ने आमंत्रित किया था।

मैक्सिको की कोलंबिया-पूर्व आदि संस्कृति में प्रोफेसर बोस की गहरी रुचि पैदा हुई। उनकी युवा मित्र डा. योलोट्ल टोरेस ने, जो उनसे पहले भी भारत में मिल चुकी थीं, उनका मैक्सिको में आतिथ्य किया। योलोट्ल उन्हें वहां के महान राष्ट्रीय मानव विज्ञान म्यूजियम ले गईं और कुछ पुराने अजटेक अवशेषों को भी दिखाया। बोस ने उस मकान के अहाते से एक पत्थर भी उठाया, जहां ट्राटस्की ने सोवियत रूस से देश-निकाले के बाद अपने अंतिम वर्ष विताये थे। उसे उन्होंने यादगार के रूप में रखा। वे ट्राटस्की की पूर्ण मानव समाज की स्वतंत्रता के लिए संपूर्ण क्रांति विपयक वचनबद्धता से बहुत प्रभावित थे।

अपने वापसी के सफर में प्रोफेसर बोस को हिरोशिमा विश्वविद्यालय, जापान का निमंत्रण मिला, जहां उन्हें नगरीय समाजविज्ञानों की अध्ययन-प्रणालियों पर भाषण देने

को बुलाया गया था। विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें नगरीय भूगोल और नगरीय समाजशास्त्र के क्षेत्रों में अपनी श्रेष्ठ उपलब्धियों के लिए कांस्य पदक प्रदान किया गया।

अप्रैल, 1968 में प्रोफेसर बोस को निरंतर शिक्षा केंद्र, शिकागो विश्वविद्यालय में 'मानवमात्र के लिए शिक्षा' विषय पर आयोजित एक अंतर्राष्ट्रीय कार्यशाला में भाग लेने का निमंत्रण मिला। वे 2 अप्रैल को शिकागो पहुंचे। उन्होंने 3 और 4 अप्रैल को कार्यशाला के आरंभ होने से पहले अनेक विद्वानों और शोधकर्ताओं के साथ उन लोगों द्वारा दक्षिण एशियाई समाज से संबंधित शोध कार्य पर व्यापक और विस्तृत विचार-विमर्श किया। विषय का क्षेत्र व्यापक था—गोलमेज सम्मेलन में गांधी का सम्मिलित होना, कलकत्ता का सामाजिक सर्वेक्षण, उड़ीसा का छाऊ नृत्य, त्रिनाथ संप्रदाय का अध्ययन, वैष्णववाद में 'लीला' की अवधारणा, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों से संबंधित कानून, अनुसूचित कबीलों को अनुसूचित जातियों से पृथक करने की समस्या, मुंडा भाषा, तमिल भाषा तथा चाय बगानों में संस्कृति और श्रम। अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों की समस्याओं पर भाषण देने का निमंत्रण बोस को मानव-विज्ञान विभाग, शिकागो विश्वविद्यालय से मिला था। बोस ने रोनल्ड ईडन से बंगाल में कायस्थों की सामाजिक व्यवस्था पर भी लंबा विचार-विमर्श किया।

उनके शिकागो पहुंचने के दो दिन बाद ही, 4 अप्रैल की रात्रि को मार्टिन लूथर किंग की हत्या कर दी गई। जैसे ही यह खबर शिकागो पहुंची, वहां निरंतर शिक्षा केंद्र के पड़ोस ही से जातीय दंगा आरंभ हुआ। बोस अपने होटल के कमरे से निकलकर यह पूछताछ करने लगे कि क्या किसी शांतिवादी समूह द्वारा इसे रोकने का प्रयत्न किया जा रहा है या नहीं।

एक छोटी शोकसभा के बाद सम्मेलन का पूर्व अधिवेशन आरंभ हुआ। प्रोफेसर बोस ने एक छोटे-से भाषण में कहा कि मार्टिन लूथर किंग के जीवन और शहादत का महत्व ऐसे वातावरण में और अधिक बढ़ जाता है, जहां लोग हिंसा के सहारे विवादों को सुलझाने पर अधिक भरोसा रखते हैं।

दूसरे दिन उन्होंने कई श्वेत-अश्वेत शांतिवादी विद्यार्थियों से विस्तारपूर्वक बातचीत की और बताया कि गांधीजी किस प्रकार हिंदू-मुस्लिम झगड़ों को निबटाने का प्रयत्न करते थे। उसके बाद उन्होंने हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर स्टुअर्ट नेल्सन से मुलाकात कर श्वेत-अश्वेत समस्या से निबटने के लिए एक अहिंसात्मक सत्याग्रह की तैयारियों के बारे में विचार-विमर्श किया।

8 अप्रैल को बोस ने 'मानवजाति के लिए शिक्षा में प्राथमिकता का प्रश्न' शीर्षक से एक आलेख कार्यशाला में शामिल लोगों में वितरित किया। अल्पसंख्यकों के अधिवेशन में उन्होंने जनजाति समाकलन की हिंदू-पद्धति पर भाषण देते हुए सुझाया कि समकालीन अंतर्जातीय समस्याओं से निबटने के लिए हिंदू सभ्यता के कौन-से पक्षों का प्रयोग किया जा सकता है।

कार्यशाला की कई बैठकों में बोस ने शांति-स्थापना के अन्य तरीकों, जो कि अंतर्राष्ट्रीय सरकार अथवा संयुक्त राष्ट्र से भी आगे हैं, को अपनाने की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने जोर देकर कहा कि युद्ध के बदले यदि सत्याग्रह-जैसी कोई व्यवस्था नहीं अपनाई गई, तो केवल शिक्षा या संवैधानिक तरीके ही अंतर्जातीय अथवा अंतर्राष्ट्रीय झगड़ों को सुलझाने के लिए पर्याप्त नहीं होंगे।

बाद में, टोकियो विश्वविद्यालय के प्रोफेसर चिए नाकाने ने, जो स्वयं कार्यशाला में शामिल थे, मुझे बताया कि प्रोफेसर बोस का सभी सदस्यों पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्हें 'मानवजाति के लिए शिक्षा' की परामर्श समिति का सदस्य चुना गया।

शिकागो में अपने सप्ताह-भर के निवास के दौरान बोस ने जिन शैक्षिक और बौद्धिक विचार-विमर्शों में भाग लिया, उनका विवरण मैंने नहीं दिया है। परंतु दिया गया संक्षिप्त ब्यौरा इसका पर्याप्त प्रमाण है कि अनेक सामाजिक एवं नैतिक मुद्दों के विभिन्न पहलुओं तथा दूसरों को प्रभावित करने और विचार-विमर्श में भाग लेने की उनकी कितनी क्षमता थी।[46]

नवंबर 1969 में प्रोफेसर बोस को हवाई विश्वविद्यालय, होनोलूलू के पूर्व-पश्चिम केंद्र में आयोजित गांधी शांति संगोष्ठी में भाग लेने के लिए निमंत्रण प्राप्त हुआ।

वे 2 नवंबर को बैंकाक, हांगकांग और टोकियो होते हुए होनोलूलू पहुंचे। प्रोफेसर सूसेन एल. रुडोल्फ रीड ने अपने पत्र में यह समझाने का प्रयत्न किया कि किस प्रकार गांधीजी जनता को प्रभावित करते थे। एक टीकाकार के रूप में बोस ने बताया कि गांधीजी सामूहिक रूप से जनता को अपील नहीं करते थे, बल्कि अपने भाषण के माध्यम से हर उस व्यक्ति को व्यक्तिगत रूप से निर्देशित करते थे, जो उस समय भीड़ में बैठा हो। वह उनकी उत्तरदायित्व की भावना को जाग्रत करना चाहते थे और इस प्रकार उनके भावावेश का प्रयोग नीतियां लागू करने के लिए करते थे।

उनका एक मार्क्सवादी आर्थिक इतिहासकार डा. डान मिलर के साथ गांधी के रचनात्मक साधनों द्वारा राजनीतिक संघटन के तरीकों पर एक लंबा विचार-विमर्श हुआ। उन्होंने 'गांधी: क्रांति-युद्ध बनाम सत्याग्रह' शीर्षक से एक लेख भी प्रस्तुत किया।

उनकी बातचीत हमेशा की तरह केवल सभागार तक ही सीमित नहीं थी। विभिन्न क्षेत्रों के विद्वानों से उनका स्पष्ट और रुचिकर विचार-विमर्श हुआ और गांधीवाद के प्रमुख पहलुओं पर व्यापक विचारों का आदान-प्रदान हुआ, और समकालीन स्थिति में वह कहां तक सार्थक है, इस बात पर भी विचार किया गया। हवाई विश्वविद्यालय के मानव विज्ञान विभाग के सदस्यों से उनकी भारतीय जनजातीय स्थिति पर बातचीत हुई।

श्रीमती ऐलन वाट्टमुला उन्हें पोलिनेसियन संस्कृति केंद्र ले गईं, जो कि होनोलूलू से करीब चालीस मील की दूरी पर था। बोस ने बहुत चाव से देखा कि केंद्र

में अलग-अलग द्वीपों की संस्कृति जनता के सम्मुख किस प्रकार प्रस्तुत की गई है। देखते समय वे इस बात पर विचार करते रहे कि भारत में मानव वैज्ञानिक संग्रहालयों को किस प्रकार बेहतर बनाया जा सकता है।

प्रोफेसर बोस 8 नवंबर को हवाई से वापस रवाना हुए और 9 नवंबर को बहुत सुबह नयी दिल्ली हवाई अड्डे पर उतरे। उसी दिन करीब 8 बजे वह गांधी स्मृति संग्रहालय गये और होनोलूलू में तैयार किये गये गांधी शांति विषयक दस्तावेज और शोधपत्र संग्रहालय को भेंट किये।[47]

10

मानव विज्ञान संबंधी भारतीय परंपरा का निर्माण

मैं पहले ही कह चुका हूं कि निर्मल बोस इस बात से बहुत चिंतित थे कि अधिकतर भारतीय मानव वैज्ञानिक नये और उचित सैद्धांतिक तथा पद्धतिबद्ध उपकरणों के प्रयोग के आधार पर शोध के कुछ क्षेत्रों की सामाजिक वास्तविकता को समझने के लिए अपने विशिष्टि क्षेत्र में पर्याप्त रुचि नहीं रखते थे। उनकी मान्यता थी कि इस प्रकार की वैज्ञानिक खोज को एक नई दिशा तथा बल मिलेगा, अगर वह राष्ट्रीय विकास और मानव मात्र के उत्थान, विशेपकर पिछड़े वर्गों के उत्थान के विचार से प्रेरित हो।

प्रोफेसर बोस को एक अन्वेपक के रूप में क्षेत्र में जाना अच्छा लगता था और वे क्षेत्रीय स्थिति की समस्याएं समझने के लिए पूरी तरह सतर्क रहते थे। उन्हें अपने मस्तिष्क में बेकार की शब्दावली भर लेना बहुत खराब लगता था। वे अपनी खोज को स्वयं निर्देशित करते थे और उसके लिए जरूरी प्रश्नों को खुद ही उठाते थे। वे कभी भी लंबी प्रश्नावलियां और लंबे-चौड़े कार्यक्रम बनाने में रुचि नहीं रखते थे, क्योंकि उनके विचार में यह सब मनुष्य और उनके वातावरण में प्रत्यक्ष संबंध में रुकावट का काम करता है। बोस को पूरा विश्वास था कि अगर मानव विज्ञान और अन्य संबंधित विषयों के युवा शोधकर्ताओं का एक दल मानवीय परिस्थितियों की वास्तविकता को समझने के लिए देहातों में जाकर काम करे, तो उनमें स्वतः ही मानवीय स्थिति को समझने के लिए नये साधनों और सिद्धांतों का निर्माण करने का आत्मविश्वास पैदा होगा। अपने भाषणों, अनौपचारिक बातचीत, सफरनामों, प्रचलित तथा व्यावसायिक लेखनी के माध्यम से प्रोफेसर बोस सामाजिक अन्वेषण में एक स्वतंत्र दृष्टिकोण की मनोवृत्ति को अभिव्यक्त करते थे। परंतु उन्हें अक्सर इस बात से दुख होता था कि मानव विज्ञान से संबद्ध भारतीय विद्यार्थी पुस्तकों (अधिकतर विदेशियों द्वारा लिखी हुई) से बाहर निकलकर और स्वयं क्षेत्र में जाकर ध्यानपूर्वक पर्यवेक्षण करने और उसके आधार पर निर्णय लेने से घबराते हैं। उनके कुछ सहयोगी इस बात पर उनकी आलोचना करते थे कि उनके कई शोधपत्रों के साथ पर्याप्त ग्रंथसूची नहीं होती थी। बोस की रुचि युवा शोधकर्ताओं को नयी समस्याओं और शोध की नयी पद्धतियों की ओर आकर्षित करने में अधिक थी, न कि सिद्ध और घिसी-पिटी वस्तुओं को प्रस्तुत करने में।

जनवरी, 1959 में उन्हें भारत सरकार से एंथ्रोपोलाजिकल सर्वे आफ इंडिया के निदेशक और मानव वैज्ञानिक परामर्शदाता के पद पर कार्य करने का निमंत्रण मिला। इससे उन्हें युवा अन्वेषकों के एक समूह को भारतीय जनता की सामाजिक और सांस्कृतिक वास्तविकता में क्षेत्रीय अध्ययन पर आधारित अन्वेषण में अधिक जोश से काम करने की प्रेरणा देने का अवसर मिला।

सर्वे का कार्यभार संभालने के कुछ दिन बाद ही उन्होंने मुझे नागपुर एक तार भेजा और शीघ्र कलकत्ता आने को कहा। इसका मुख्य उद्देश्य था कि हम सर्वे के मध्यभारत क्षेत्रीय केंद्र द्वारा नये कार्यक्रमों पर विचार-विमर्श कर सकें। मैं उस समय मध्यभारत केंद्र का शोध अधिकारी था। मैं तुरंत कलकत्ता गया और हावड़ा से सीधे भारतीय संग्रहालय पहुंचा। वहां मैंने देखा कि मानव विज्ञान सर्वे के सारे सदस्य, वैतनिक कर्मचारी भी, केंद्रीय लेक्चर हाल में एकत्रित थे। मैं भी सभा में सम्मिलित हो गया और जल्द ही प्रोफेसर बोस आये और हमें संबोधित किया। उन्होंने कहा कि वे कलकत्ता और अन्य केंद्रों में काम कर रहे शोधकर्ताओं द्वारा एक व्यापक क्षेत्र में की गई शोध की कद्र करते हैं, फिर भी सोचते हैं कि उसमें अधिकतर शोध अस्थायी हैं और उसके पीछे विभिन्न शोध-पक्षों को समन्वित करने की कोई योजना नहीं है, ताकि भारतीय उपमहाद्वीप में मानवीय जैविक तथा सामाजिक-सांस्कृतिक रचना के परिवर्तन के आधार स्पष्ट होकर उभरें। उन्होंने हम सबसे इस बारे में सवाल किये कि किस प्रकार काम शुरू किया जा सकता है।

शीघ्र ही पहला कदम तय किया गया। 1956 में बोस ने एक लेख लिखा था 'भारत के संस्कृति-क्षेत्र' (Cultural Zones of India), जो एक अथक घुमक्कड़ के रूप में किये गये उनके पर्यवेक्षण पर आधारित था।[48] उस लेख का मुख्य आधार यह विचार था कि हालांकि भारत भाषायी स्तर पर उत्तर और दक्षिण में विभाजित है और यह वर्गीकरण आर्य और द्रविड़ भाषाओं के आधार पर किया गया है, लेकिन बहुत-सी भौतिक प्रवृतियों, जैसे खान-पान, खाना पकाने के माध्यम, वेश-भूषा, जूतों इत्यादि के आधार पर भी उपमहाद्वीप को दो क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है—'उत्तर-पश्चिम' तथा 'दक्षिण-पूर्व'। यह विभाजन इन प्रवृत्तियों के वितरण पर आधारित है और भाषा के आधार पर किये गये विभाजन को काटता है और एक तरफ दक्षिणी-पश्चिमी एशिया की सांस्कृतिक विशेषताओं से जुड़ा हुआ है तो दूसरी तरफ दक्षिणी-पूर्वी एशिया के साथ।

शोधकर्ताओं के साथ लंबी बातचीत के दौरान बोस को लगा कि सर्वे इन भौतिक विशेषताओं के वितरण के संबंध में विस्तारपूर्वक अध्ययन कर सकता है, अगर कुछ युवा वैज्ञानिक कम से कम भारत के हरेक जिले के एक गांव में उपलब्ध भौतिक प्रवृत्तियों का ध्यान से अध्ययन कर सकें। इसके लिए एक दल की स्थापना की गई, जिसमें सौ

सदस्य तो मौजूदा अधिकारी स्टाफ से थे और सात नये भर्ती किये गये थे। बाद में सात और सदस्यों ने इस योजना में भाग लिया।

प्रोफेसर बोस ने निर्णय लिया कि परियोजना नागपुर से समन्वित की जाय, जो कि भारत का सही मायने में भौगोलिक केंद्र है; और उन्होंने मुझे परियोजना को समन्वित करने के आदेश दिये।

प्राथमिक रूप में 1959 में एक सीधा-सा कार्यक्रम बनाया गया, जिसके आधार पर शुरू में मध्यप्रदेश (जबलपुर डिवीजन) और महाराष्ट्र (नागपुर क्षेत्र) से सटे हुए 16 जिलों का सर्वेक्षण किया जा सके। दो युवा विद्वानों एस.के. गांगुली तथा पी.के. मिश्रा को निर्धारित क्षेत्र के हरेक जिले में एक बहुजातीय गांव में चार-पांच दिन रहने के लिए कहा गया। इस आरंभिक सर्वेक्षण-केंद्र के पूरे निरीक्षण के आधार पर कार्यक्रम को परिवर्तित किया गया और काम की एक अंतिम योजना बनाई गई। निर्णय किया गया कि हरेक कार्यकर्ता क्षेत्र में काम करनेवाले महीनों—अक्तूबर, 1959 से मार्च, 1960 और अक्तूबर, 1960 से मार्च, 1961 के दौरान सामान्यतः एक राज्य के सभी जिलों का दौरा करेगा। इन दो वर्षों में भारत के 322 जिलों में से 311 जिलों और 430 गांवों का सर्वेक्षण कर लिया जायेगा।

प्रोफेसर बोस लगातार परियोजना की प्रगति का निरीक्षण करने के लिए नागपुर आते थे। उन्होंने मानचित्रकार को आदेश दिया था कि वह भारत का एक बहुत बड़ा नक्शा, जिसमें सभी जिलों की सीमाएं अंकित की गई हों, दीवार पर बना दें, और मुझसे कहा कि जिन जिलों में काम किया जा चुका है, वहां रंगीन पिन लगा दिये जायें और सर्वेक्षण को युद्ध-स्तर पर समन्वित किया जाय।

परियोजना में काम करनेवाले हर युवा कार्यकर्ता ने क्षेत्रीय पर्यवेक्षण के आधार पर कृषकों के जीवन पर राज्यस्तरीय परिप्रेक्ष्य बना लिया था। कई कार्यकर्ताओं ने बहुत-सी रोचक सूचनाएं एकत्रित की थीं, हालांकि वह हमारे कार्यक्रम के अंतर्गत नहीं थीं। जब वह नागपुर में आधार कैम्प लौटते थे, तो सूचनाओं तथा अनुभवों का आदान-प्रदान बड़े जोश के साथ किया जाता था।

क्षेत्र में काम पूरा करने के बाद पूरा दल कलकत्ता स्थानांतरित कर दिया गया, जहां पूरी एकत्रित सामग्री 9"x5" के आकारवाले कार्डों पर उतार दी गई। बोस ने फिर सभी कार्यकर्ताओं से कहा—

''अब तुम इस सामग्री को सतर्कतापूर्वक संभालना भूल जाओ... अब यह तुम्हारी और पूरे राष्ट्र की है। हम तुममें से हरेक को, कहीं-कहीं दो को, एक साथ भारत के नक्शे पर इन विशेषताओं के वितरण का आधार बनाने और संक्षिप्त रिपोर्ट देने के लिए कहेंगे। इस सहयोग से हमें आशा है कि अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य और अपने साथियों से मिलकर काम करने और सामग्री एवं विचारों के आदान-प्रदान का मनोभाव पैदा होगा।''

जिन्होंने उस परियोजना में भाग लिया, वे हमेशा प्रोफेसर बोस के नेतृत्व में अन्वेषण और मिलकर काम करने के इस रचनात्मक जोश को याद रखते थे। सामान्यतया गोपनीयता तथा श्रेणीबद्धता का जो वातावरण नौकरशाही के कारण किसी भी सरकारी व्यवस्था में पैदा होता है, वह स्वत: समाप्त हो गया था। परियोजना का परिणाम एक पुस्तक में शामिल हुआ : 'भारत में कृषक जीवन : भारतीय एकता तथा विभिन्नता का अध्ययन' (1961)। उसका एक बांग्ला अनुवाद 'मारेतर ग्राम जीवन' शीर्षक से प्रोफेसर बोस ने स्वयं किया और दूसरा जापानी भाषा में हुआ, जिसे प्रोफेसर ज्यो युनेकुरा ने किया था। बाद में ये दोनों अनुवाद प्रकाशित किये गये।

'भारत में कृषक जीवन' की प्रस्तावना में प्रोफेसर बोस ने लिखा :

"मुझे यह लिखते हुए बड़ी प्रसन्नता होती है कि पूरे दल ने एक परिवार की तरह मिलकर कार्य किया और उन्हीं के सम्मिलित प्रयत्नों से भारत का यह संपूर्ण चित्र दो वर्ष से भी कम अवधि में बन सका है।"[49]

उसी पुस्तक की भूमिका में बोस ने संक्षिप्त रूप से उन उद्देश्यों का उल्लेख किया, जिनसे प्रेरित होकर सांस्कृतिक क्षेत्रों पर वह सर्वेक्षण किया गया और जिससे निम्नोक्त विचार सामने आये—

"जो सूचना अभी तक इन भौतिक विशेषताओं के संबंध में इकट्ठा की गई है, उससे स्पष्ट है कि उनके आधार पर दक्षिण-पूर्वी एशिया, पश्चिम में बसे देशों तथा भारत के उत्तर-पश्चिम के देशों के साथ एक रिश्ता था…"

"अगर जीवन की भौतिक कलाओं के आधार पर क्षेत्रीयकरण दिखाई देता है तो… देश के सामाजिक ढांचे में विभिन्नता कम है, अगर हम जीवन के ऊंचे स्तरों पर जाते हैं जो विचारों, विश्वासों अथवा कला तक सीमित हैं तो भौतिक स्तर पर जो अंतर दिखाई देते हैं वे क्षीण होते चले जाते हैं और अंतत: उनका स्थान विश्वासों और आकांक्षाओं का एकीकरण ले लेता है, जिससे भारतीय सभ्यता का अपना विशिष्ट स्वरूप प्राप्त होता है।"

"जैसा कि हमने कहा, भौतिक संस्कृति के स्तर पर विभिन्नता हमारी भाषायी सीमाओं का बार-बार उल्लंघन करती है, भले ही हम इसे स्वीकार न करें कि भारत की विभिन्नताओं में एकता अधिक है। और अगर मानव विज्ञान सर्वे आफ इंडिया के प्रयत्नों से यह पाठ समझ में आ सके, तो इस विभाग का प्रत्येक कार्यकर्ता स्वयं को पुरस्कृत मानेगा।"

"समाजशास्त्र के किसी स्वरूप को समझने का उत्कृष्ट साधन जीवन के तथ्यों को भली-भांति गंभीरता से समझना है।"[50]

बोस ने प्रत्येक शोधकर्ता से उनके गांवों के अनुभवों और पर्यवेक्षणों के बारे में विस्तार से बात की। उन्होंने हरेक की रुचि के अनुसार विशेष समस्याओं अथवा विशेष विषयों पर गहराई से अध्ययन करने के लिए कहा। उदाहरणस्वरूप जब उन्हें प्रमोद मिश्र

से पता लगा कि वह गाड़िया लुहारों और राजस्थान के खानाबदोश कारीगरों के समूह में रुचि रखते हैं, तो उन्होंने उन्हें इस विषय पर एक विशेष अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित किया कि इन लोगों ने कैसे और क्यों इस प्रकार का खानाबदोशी का जीवन अपनाया और बस्ती में रहनेवाले किसानों से उनके सहजीवन का आधार क्या है। मिश्रा ने आगे जाकर गाड़िया लुहारों पर पीएच.डी. की, उन पर एक प्रबंध लिखा और आज वे खानाबदोशों पर एक अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के विशेषज्ञ माने जाते हैं।

सांस्कृतिक क्षेत्र सर्वे-परियोजना के विभिन्न कार्यकर्ताओं में क्षेत्रीय कार्यों के प्रति किस प्रकार जीवनपर्यंत रुचि पैदा हुई, इसका एक प्रेरक उदाहरण हमें वैद्यनाथ सरस्वती द्वारा कर्नाटक विश्वविद्यालय में भारतीय सभ्यता की व्याख्या पर प्रस्तुत अपनी भाषणमाला के दौरान की गई टिप्पणी में मिलता है—

"जब मुझे व्यावसायिक रूप से मानव वैज्ञानिक की दीक्षा दी गई तो प्रोफेसर बोस ने मुझे भारत के गांवों में जाने के लिए कहा और कहा कि अपनी स्केचबुक साथ ले जाऊं और ग्रामीण आबादियों के आकार, मकानों के प्रकार, कृषि-औजार, लिबास और गहने तथा ग्रामीण भारत की दूसरी विशेषताओं के चित्र बनाऊं। अगर आपने भारत के कृपक जीवन पर उनकी पुस्तक (1961) पढ़ी है, तो आपको पता होगा कि इस प्रकार के भारत-दर्शन पर हमने क्या किया। इस काम के पूरा होने के बाद उन्होंने मुझे एक दूसरी परियोजना सौंपी, जिसके अंतर्गत मुझे मिट्टी के बर्तन बनाने की प्रौद्योगिकी का अध्ययन करना था। इसके लिए मुझे केवल भौतिक विशेषताओं के स्वरूप ही नहीं, बल्कि उस शिल्पवैज्ञानिक प्रक्रिया का भी निरीक्षण करना था, जिससे वह विशेषताएं प्रकट होती हैं। काम सौंपते हुए वे मुझे भारत के दीवारी नक्शे के पास ले गये और कहा कि हमें इस विस्तृत क्षेत्र में काम करके मिट्टी के बर्तनों की प्रौद्योगिकी समझनी है। मैं जब क्षेत्र में गया तो मेरे पास केवल कुछ कापियां, एक स्टाप वाच तथा एक कैमरा था। वह प्रतिवेदन [Pottery Technology in Peasant India (1966)] (किसान भारत में मिट्टी के बर्तनों की प्रौद्योगिकी) प्रकाशित हुआ है⋯ उस प्रौद्योगिकी पर काम करते हुए मैं उस शिल्प और जाति के संबंध में चकित था। मेरे सहयोगी एन.के. बेहरूरा ने यही सब दक्षिण भारत में देखा। हमने अपने निष्कर्ष प्रोफेसर बोस को बताये। अब वे हमें एक अधिक कठिन योजना देने पर राजी हो गये, जिसका विषय था 'मृद्पात्र प्रौद्योगिकी की सामाजिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्था'।"[51]

इस प्रकार के स्वतंत्र क्षेत्रीय अन्वेषण पर आधारित काम के प्रति रुझान के चलते वैद्यनाथ सरस्वती ने धर्म और कर्मकांड के संस्थागत तथा सैद्धांतिक पहलुओं पर महत्वपूर्ण कार्य किये—काशी की सनातन सांस्कृतिक परपंरा : मिथक तथा वास्तविकता (1975), ब्राह्मणवादी कर्मकांड की परम्परा (1977), काशी के संन्यासी (1977), और कर्मकाण्ड की भाषा : मानव विज्ञान से आगे का परिप्रेक्ष्य (1982)।

इन कार्यों में सरस्वती ने भारतीय सभ्यता की सामाजिक तथा सांस्कृतिक संरचना में परिवर्तन तथा अभिनिवेश की सभ्यता-संबंधी कुछ सैद्धांतिक अवधारणाओं को विकसित किया।

भौतिक-सांस्कृतिक विशेषताओं पर अखिल भारतीय सर्वेक्षण के परिणाम ने प्रोफेसर बोस को प्रोत्साहित किया कि वे भारतीय सभ्यता के सूचीस्तंभीय आकार और उसके रूपांतर से संबंधित क्षेत्रीय कार्य को आरंभ करें। इसमें कुछ महत्वपूर्ण दस्तकारी तकनीकों, जो कि आदि इतिहास काल से चली आ रही हैं, का अध्ययन; मृदपात्रों तथा धातुई दस्तकारी, भारत के विभिन्न क्षेत्रों में दस्तकारी और जाति-व्यवस्था की असमान संरचना; परंपरागत भारतीय समाज के संघटन का मंदिरों, मठों तथा राजतंत्रीय धारणा के माध्यम से अध्ययन; जातीय व्यवसायों के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का अध्ययन एवं जातीय आंदोलन तथा ग्रामीण और नगरीय भारत के विभिन्न भागों से जातीय गतिशीलता का आंदोलन।

एंथ्रोपोलाजिकल सर्वे के निदेशक पद पर अपनी अल्पकालिक अवधि में भी बोस ने भारतीय संग्रहालय में मानवजाति वर्णन की दीर्घा को सुव्यवस्थित किया। वहां प्रदर्शन में जनजातीय तथा गैर-जनजातीय ग्रामीण भारत का भी समावेश किया गया। वे विवेकपूर्ण ढंग से भारत की अधिकतर ग्रामीण आबादी को, भले ही वह जनजाति हो अथवा अन्य जाति, कृपक मानते थे।

बोस ने हड़प्पा में पाये गये अस्थि-अवशेपों पर रिपोर्ट पूर्ण करने के लिए युवा विद्वानों को प्रोत्साहित किया तथा उत्तर और दक्षिण भारत का एक सुनिर्धारित सर्वेक्षण आरंभ करवाया। उन्होंने भारत के विभिन्न भागों में अंतर्समूह रूढ़िवादी धारणाओं के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक अध्ययन को भी प्रोत्साहित किया।

बोस विभिन्न प्राकृतिक परिवेश में जाति और जनजाति की उत्पादन-व्यवस्था को जनसांख्यकीय आधार पर पोपित करने की क्षमता में बहुत रुचि रखते थे। उन्होंने एक भूगोलशास्त्री शरदेंदु बोस को उत्साहित किया कि वह मध्य-पूर्वी तथा उत्तर-पूर्वी भारत में चल खेती के अधीन भूमि की उपजाऊ क्षमता का अध्ययन करें।

सर्वे खत्म करने के कुछ महीने बाद बोस ने कलकत्ता के सामाजिक सर्वेक्षण पर अपना प्रतिवेदन पूरा कर लिया। सर्वेक्षण उन्होंने 12 शोधकर्ताओं की मदद से किया था। उसमें नगर के 80 वार्डों में विभिन्न धार्मिक और भाषायी समूहों के विभाजन और उनकी व्यावसायिक विशिष्टता पर सामान्य टिप्पणियां तो थीं ही, नगर स्थित स्वैच्छिक सेवा-संस्थाओं का सर्वेक्षण भी था, और नगर के कई प्रभावशाली परिवारों के पारिवारिक इतिहास से संचित की गई विस्तृत सामग्री भी थी। 1968 में एक पुस्तक प्रकाशित की गई, जिसका शीर्पक था 'कलकत्ता-1964 : एक सामाजिक सर्वेक्षण'। 'साइंटिफिक अमेरिकन' में प्रकाशित एक लेख में, जिसका शीर्पक था 'कलकत्ता एवं अकालिक महानगर' (1965) में उन्होंने अपने निष्कर्पों को समाहित किया—

"यह कहा जा सकता है कि नगर की जनसंख्या में विभिन्न जातीय समूहों का आपसी संबंध वही है, जो विभिन्न जातियों का समूचे भारत में एक दूसरे के साथ है... वास्तव में पुरानी व्यवस्था में जातियों की जो स्थिति है, वही स्थिति अपने आपको एक नये रूप में प्रस्तुत कर रही है। कलकत्ता अमेरिकी नगरों की भांति कठौती नहीं है... कलकत्ता की अर्थव्यवस्था अभाव की अर्थव्यवस्था है, क्योंकि नौकरियों की कमी है, इसलिए हरेक उन्हीं व्यवसायों से चिपका रहता है जिनके साथ उसका जातीय समूह जुड़ा हुआ है और अपने ही भाषायी समूह, अपने ही सहकर्मियों, अपनी ही जाति के व्यक्तियों और अपने ही गांव अथवा जिले से आये लोगों पर आर्थिक सहायता के लिए निर्भर रहता है। एक प्रतिक्रिया स्वरूप सामूहिक एकीकरण के पुराने तरीकों पर निर्भरता के कारण जातीय समूह में अंतर स्थायी और सुदृढ़ होता है।"[52]

'कल्चरल एंथ्रोपोलाजी' (1929) के प्रकाशन की शुरुआत से लेकर 1959-1964 के दौरान प्रोफेसर बोस द्वारा एंथ्रोपोलाजिकल सर्वे आफ इंडिया में आरंभ किये गये शोध कार्यक्रमों का एक लंबा सिलसिला है, जिससे मानव विज्ञान और समाजशास्त्रों के क्षेत्रीय अन्वेषण पर आधारित भारतीय परंपरा को स्थापित करने के उनके प्रयत्नों को एक पूर्णता प्राप्त हुई।

परंतु उनकी खोज-बीन निरंतर जारी रही। 1968 में मैंने कुछ दिन प्रोफेसर बोस के नयी दिल्ली स्थित निवास पर बिताये। उनके साथ अपनी एक बातचीत के दौरान मैंने उनसे एक काल्पनिक प्रश्न पूछने की हिम्मत की—"अगर आपको जिम्मेदारी सौंपी जाये तो आप भारत में विज्ञान की व्यवस्था किस प्रकार करेंगे?" उन्होंने तत्काल उत्तर दिया—

"एक ऐसी काल्पनिक स्थिति में मेरा पहला कार्य होगा, देश की महत्वपूर्ण सामाजिक समस्या—यानी गरीबी को सुलझाने में प्रमुख राष्ट्रीय प्रयत्नों को लगाना। हमारी प्राथमिक आवश्यकता है लाखों की तादाद में प्रशिक्षित शिल्पियों की, जो हमारे गांववालों को बेहतर फसलें, बेहतर जानवरों की नस्लें, सप्लाई की बेहतर व्यवस्था और शिल्पों के आधुनिकीकरण में सहायता तथा छोटे उद्योगों की स्थापना में मदद कर सकते हैं। इन व्यावहारिक कार्यों की जरूरतों के मद्देनजर वैज्ञानिक पाठयक्रम बनाने होंगे तथा कृषि, वनस्पति और जानवरों की आनुवंशिकी तकनीक वगैरा में विशेष शोध तथा सामाजिक पुनर्गठन की समस्याओं पर विशेष शोधकार्य करने होंगे। परंतु इस व्यावहारिक शोध से अधिक महत्वपूर्ण बहुत ध्यान से चुना गया विशिष्ट विद्वानों का एक छोटा-सा दल होगा, जो विज्ञान को केवल विज्ञान के रूप में स्वीकार करते हुए शोध करेगा। अगर राष्ट्र इन व्यक्तियों की स्वायत्त ज्ञान संबंधी खोज को सम्मानजनक और सुरक्षापूर्ण सहारा नहीं देगा, तो विज्ञान की दिशा में किया जा रहा पूरा प्रयत्न बिगड़ जायेगा।"[53]

11

उत्तर-पूर्वी भारत में जनजातीय स्थिति

योजना आयोग द्वारा असम के पहाड़ी जिलों का अध्ययन करने के लिए श्री लोकसिंह की अध्यक्षता में एक अध्ययन दल नियुक्त किया गया। एंथ्रोपोलाजिकल सर्वे आफ इंडिया से सेवामुक्त होकर बोस ने उस दल में एक विशेष आमंत्रित के रूप में कार्य किया। वहां उन्होंने विस्तृत क्षेत्रों में ऊपर उठती हुई जन-जातीय नेतृत्व से बातचीत की, जिसके आधार पर वे उस नेतृत्व की राज्य और समाज संबंधी अनुभूति को समझ सके और परिवर्तन की प्रक्रिया और वांछित उद्देश्यों को भी समझ सके। उन्होंने आकांक्षाओं के स्वरूप और इस नवजाग्रत शिक्षित मध्यवर्गीय नेतृत्व की नयी भावनाओं के स्वरूप को ध्यानपूर्वक लिपिबद्ध किया। जनजातीय कबीलों के सरदारों और ग्रामीण मुखियों के परंपरागत नेतृत्व के साथ संबंधों का अध्ययन किया। उन्होंने प्रयत्न किया कि वे शिक्षित नागर जनजातीय मध्यवर्ग और सुदूर गांवों में रहने वाले लकड़हारों और कृषि-नीति का पालन करनेवाले लोगों के बीच संप्रेषण के स्वरूप को खोजें। उत्तर-पूर्वी भारत के एक बृहत् संघीय भारतीय राष्ट्र राज्य के परिप्रेक्ष्य के विकास की समस्याओं पर उन्होंने उस सुस्पष्ट नेतृत्व के विचारों को समझने का प्रयत्न किया। वहां से वे यह विचार लेकर लौटे कि उभरता हुआ जनजातीय मध्यवर्गीय नेतृत्व देश के अन्य अधिक विकसित क्षेत्रों के लोगों के साथ प्रतिस्पर्धा किये बिना अपने जातीय क्षेत्रों का शोषण करना चाहता है।

एक प्रसिद्ध क्रांतिकारी पन्नालाल दासगुप्ता ने, जो और बाद में एक सक्रिय समाजसेवक बन गये, 3 से 6 दिसंबर तक एक विचार गोष्ठी आयोजित की, जिसका विषय था 'उत्तर-पूर्वी भारत के पहाड़ी लोग'। यह संगोष्ठी कलकत्ता में योजना आयोग की सहायता से आयोजित की गई। इसमें सौ से अधिक पहाड़ों के सम्मानित प्रतिनिधियों और अन्य विद्वानों, समाजसेवकों, प्रशिक्षकों तथा बुद्धिजीवियों ने भाग लिया।

विचार गोष्ठी के आयोजन में पन्नालाल बाबू ने प्रोफेसर बोस से सहायता मांगी और उन्हें विभिन्न भाषणों और विचार-विमर्श का सारांश प्रस्तुत करने तथा उन पर अपनी समापन टिप्पणी करने के लिए कहा। बोस ने अपने समापन भाषण, जिसका शीर्षक था—'एक राज्य अथवा कई राज्य?' में इस बात पर मुख्य बल दिया कि गरीबी, पिछड़ेपन और अंतर्सामुदायिक अथवा अंतर्जातीय तनावों की समस्या उत्तर-पूर्व भारत में केवल

जनजातियों के लिए एक पहाड़ी राज्य बना देने से ही नहीं सुलझ पायेगी। उन्होंने कहा—

"मान लीजिए जनजातियां अपने लिए एक अलग राज्य की स्थापना कर लेती हैं तो क्या इसका अर्थ यह होगा कि वह राज्य आवश्यक रूप से सबसे कमजोर और गरीब की ही रक्षा करेगा और अप्रत्यक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप से उन कबीलों तथा वर्गों के हितों को प्राथमिकता नहीं देगा, जो अपेक्षाकृत अधिक विकसित हैं ? यह मान लेने के पर्याप्त कारण हैं कि जिस प्रकार मैदानों में रहनेवालों में शोषित और शोषक होते हैं, उसी तरह पहाड़ी लोगों में भी पाये जाते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि वर्ग-विभाजन के ध्रुवीकरण में अंतर है, परंतु यह अंतर केवल संख्या का है, प्रकार का नहीं है।"[54]

बोस ने अनुभव किया कि इस दीर्घकालीन उद्देश्य पर बल देना बहुत आवश्यक है कि पहाड़ी जनजातियों और मैदानों में रहनेवालों को हाथ में हाथ डालकर एक-दूसरे का सहारा लेते हुए एक ऐसी राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था की सम्मिलित रूप से स्थापना करनी है, जो कि हर प्रकार के शोषण का अंत कर सके और सामान्य जीवन को संपन्न बनाया जा सके। बोस ने कहा कि भले ही ऐसा कहना अरुचिकर हो, पर उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है जब हम जन साधारण के स्तर पर रचनात्मक आंदोलन की शृंखला का आरंभ करें।

सन 1967 में असम के राज्यपाल ने बोस को नेफा (अब अरुणाचल प्रदेश) की शैक्षणिक समस्या को लेकर एक टोही सर्वेक्षण पर आधारित एक रिपोर्ट देने के लिए कहा। बोस ने इसे स्वीकार किया। डा. आनंद भगवती तथा डा. शरदेंदु बोस दो युवा विद्वान, जिनमें एक मानव वैज्ञानिक था और दूसरा भूगोलशास्त्री—प्रोफेसर बोस के इस निदानसूचक क्षेत्रीय सर्वेक्षण में अप्रैल-मई 1967 में सम्मिलित हुए।

प्रोफेसर बोस के साथ अपने अनुभवों को याद करते हुए आनंद भगवती लिखते हैं—

"नेफा प्रशासन से मुझे एक पत्र मिला, जिसमें सूचित किया गया था कि प्रोफेसर एन.के. बोस ने इस व्यापक दौरे के लिए मेरा और शरदेंदु बोस का नाम प्रस्तावित किया है, और वे इसे राज्यपाल विष्णु सहाय के कहने पर संयोजित कर रहे हैं। मैंने तत्काल इसे स्वीकार कर लिया, हालांकि यह स्पष्ट नहीं था कि मुझे उस दौरे में क्या करना होगा... मुझे इनसे कलकत्ता में मिलने का अवसर मिला था, जब दिसंबर 1966 में पन्नालाल दासगुप्ता ने पहाड़ी लोगों पर एक संगोष्ठी बुलाई थी। एन.के.बी. उस समय भी कोई लंबी-चौड़ी शब्दावली का प्रयोग कर यह कहने को तैयार नहीं थे कि वे क्या खोजने जा रहे हैं। उन्होंने केवल इतना कहा कि वे देखना चाहते हैं कि पहाड़ों पर किस प्रकार के परिवर्तन हो रहे हैं। वे स्कूलों को, विशेष रूप से स्कूली शिक्षा को देखेंगे और देखेंगे कि युवकों का विकास कैसे हो रहा है। किसी शोध-समस्या का विस्तारपूर्वक प्रतिपादन नहीं किया गया। न किसी जटिल परिकल्पना का परीक्षण करना था, न उसे स्थापित अथवा विकसित करना था और न ही किन्हीं पूर्व निर्धारित उपकरणों तथा उपागमों को अपनाने

की बात थी। सिंहावलोकन करते हुए उनके उपागम को आज मैं एक ऐसे अन्वेषक का तरीका समझता हूं, जो अपनी दृष्टि को पूर्व कल्पित विचारों से बोझिल करने को तैयार नहीं था ... चलें, हम खुद चलकर देखें, उन्होंने केवल इतना ही कहा।''[55]

प्रोफेसर बोस ने पश्चिम में केमंग जिले से दौरा आरंभ किया और पूर्व-दक्षिण-पूर्व में समाप्त किया। सफर की शुरुआत में आनंद और शरदेंदु अक्सर प्रोफेसर बोस के स्वास्थ्य को लेकर चिंतित रहते थे। उनकी आयु उस समय 66 वर्ष थी। हर दिन जीप में काफी लंबा सफर होता था, पैदल भी काफी चलना पड़ता था। रेस्ट हाउस बदलने पड़ते थे, नये बिस्तर और कई तरह के खाने खाने पड़ते थे, जिनका स्वाद अनिश्चित ही हुआ करता था। आनंद लिखते हैं—

''बोमडिला पहुंचने के दो दिन बाद हम पूरी तरह संयत हुए, क्योंकि हमारी सारी चिंता गलत साबित हुई और हम दोनों के आत्मविश्वास को धक्का-सा लगा। निशी नामक एक गांव (जो उस समय डाफला कहलाता था और एक ऊंची चोटी पर स्थित था) को देखने के लिए एक दिन का दौरा निर्धारित किया गया था ... पर जब हमारी जीप पहाड़ी के नीचे पहुंची तो बारिश बहुत तेज हो गई थी। क्योंकि गांव का दौरा करने का और कोई मौका हमें नहीं मिलने वाला था, इसलिए एन.के.बी. ने कहा कि हम बारिश में ही ऊपर चढ़ेंगे। बारिश तेज थी और चढ़ाई पर फिसलन थी ... कुछ ही देर में हम तीनों दो अलग गुटों में बंट गये, एन.के.बी. तेज कदमों से आसानी से चढ़ते हुए आगे-आगे थे और हम दोनों बुरी तरह से हांफते हुए उनके पीछे-पीछे चढ़ रहे थे और यह मना रहे थे कि पीछे पलटकर वे हमारी बुरी हालत न देखें ... एन.के.बी. पूरे दौरे में पूरी तरह स्वस्थ रहे। हर रोज सुबह उठते ही, वह कुछ आसन करते थे, फिर स्नान करते और ताजा और स्फूर्त दिखाई देते थे ...''[56]

आनंद भगवती दल की अन्वेषण-पद्धति का भी सटीक विवरण देते हैं—

''सभी गांवों और प्रशासकीय केंद्रों में, जहां भी हम गये वहां पर औपचारिक रूप से शिक्षकों, विद्यार्थियों और सरकारी अधिकारियों, विशेषकर शिक्षा विभाग के अधिकारियों, के साथ विचार-विमर्श होता था। विद्यार्थियों के साथ विचार-विमर्श बहुत ही दिलचस्प हुआ करता था, क्योंकि मुझे भाषा आती थी। टूटी-फूटी असमिया बोल-चाल की भाषा थी। तो मैं एक प्रकार से सामूहिक विचार-विमर्श और अन्य भेंट वार्ताओं में दुभाषिये का काम किया करता था। मुझे आरंभ से ही एन.के.बी. ने पूरी स्वतंत्रता दे दी थी कि मैं जो चाहूं प्रश्न पूछूं। एन.के.बी. शैक्षणिक आकांक्षाओं पर कुछ सीधे सरल प्रश्न पूछा करते थे और एक-एक करके सबसे सभा में पूछते थे कि वह जीवन में क्या करना चाहते हैं। विज्ञान और गणित से संबद्ध कठिनाइयों के बारे में निश्चित प्रश्न पूछते थे, और सामूहिक मामलों में नौजवानों के लगाव को जांचने के लिए प्रश्न पूछते थे। जिस प्रकार वह इन सभाओं का संचालन करते थे, उन्हें एक विचार गोष्ठी का-सा रूप प्राप्त हो जाता था और स्कूलों के छात्र स्वयं ही बातचीत में भाग लेने लगते

थे—चुपचाप बैठे दर्शक ही नहीं बने रहते थे। बैठक को एक ओजस्वी भाषण से समाप्त किया जाता था, जो पूरी तरह मानव विज्ञान से हटकर होता था, क्योंकि उससे विद्यार्थियों को यह समझाया जाता था कि पू. देश के परिप्रेक्ष्य में उनकी क्या भूमिका होनी चाहिए।''[57]

19.4.67 को प्रोफेसर बोस ने दौरे की डायरी में लिखा है— ''19.4.1967: संध्या: हायर सैकेंडरी स्कूल के विद्यार्थियों से उनके एक होस्टल में बैठक;

''…बाई तेमी, रतन ग्राम से पहाड़ी मिरी, जो कि दसवीं कक्षा का विद्यार्थी है, यूनियन का सचिव है। यूनियन यहां एक वर्ष पहले स्थापित की गयी थी, परंतु अनौपचारिक रूप से 1961 से चल रही है… यह स्कूलों में विकास कार्यक्रम चलाते हैं, विद्यार्थियों की सहायता करते हैं और पूरे समाज के लिए कई प्रकार की कल्याणकारी योजनाएं चलाते हैं।''

''यह देखना बहुत आवश्यक है कि आमतौर पर यह समझा जाता है कि अपनी वेषभूषा तथा दूसरे तरीकों के कारण ये विद्यार्थी अपने लोगों से अलग हो गये हैं, परंतु वास्तव में ऐसा नहीं है… लगता है कि यह लोग जनता के विश्वस्त नेताओं के रूप में स्थापित हो रहे हैं। गांव वाले इन लोगों पर दिशा-निर्देश तथा नेतृत्व के लिए निर्भर हैं। इनमें अपने लोगों की सहायता करने की गहरी भावना है और अपने लोगों पर पड़े बुरे प्रभावों को रोकने की इच्छा है।''

''जब एक बड़ा अपात्तनी गांव, जिसका नाम हरि था, जल कर राख हो गया तो यूनियन के नेतृत्व में सभी विद्यार्थी मकानों के पुनर्निर्माण में सहायता करने गये। उन्होंने व्यापक सहायता की… एक अन्य घटना का उदाहरण इस बात को प्रमाणित करने के लिए दिया गया कि किस प्रकार उच्च कक्षाओं के विद्यार्थी जातीय नेताओं के रूप में महत्वपूर्ण हो गये हैं : पिछले वर्ष दो अमीर अपात्तनी (मीता अथवा बुजुर्ग) जो कि दो पड़ोसी गांवों—हाजा और दूता के रहनेवाले थे, किसी झगड़े में उलझ गये। अपनी इज्जत बनाये रखने के लिए और दूसरों की नजरों में न गिरने की इच्छा में उन्होंने परंपरागत आसान तरीके से खूब पैसा खर्च करना आरंभ किया, विशेष रूप में मिट्ठन को मारा… दोनों पक्षों ने अलग-अलग 40 को तो मार ही दिया और 40-40 और इकट्ठे कर लिये थे। दोनों के परिवार भी उन्हें समझाने में सफल नहीं हुए। अंत में, दोनों के रिश्तेदारों ने यूनियन को बीच-बचाव करने और इस प्रकार संपत्ति के नाश को रोकने के लिए कहा। 'आप नौजवान, शिक्षा पाने के बाद हमारे लिए भगवान का रूप हैं, हम सब आपके कहे को स्वीकार करेंगे।'—यह उन लोगों ने कहा जो सहायता मांगने आये थे। लड़कों ने सफलतापूर्वक समझौता करवाया और उसके बाद कोई संपत्ति नष्ट नहीं की गई।''[58]

नेफा की शैक्षणिक समस्याओं पर बोस द्वारा लिखी रिपोर्ट आयुक्त, अनुसूचित जाति और जनजाति की रिपोर्ट, 16वीं रिपोर्ट, नयी दिल्ली (1968-1969) में प्रकाशित हुई थी।

1969 में सर्दी के दिनों में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने प्रोफेसर बोस और अन्य चार मानव वैज्ञानिकों को उत्तर-पूर्वी भारत के वियुक्त पहाड़ी जनजातीय क्षेत्रों के विकास और एकीकरण की समस्या पर विचार-विमर्श के लिए निमंत्रण दिया। इस बैठक में गृहमंत्री, योजना आयोग के कई सदस्य, असम के राज्यपाल और संबंधित यूनियन टेरिटरी के चीफ कमिश्नर भी उपस्थित थे। इस बैठक में, जिसमें शामिल होने का सौभाग्य मुझे भी मिला था, प्रोफेसर बोस ने स्पष्ट रूप से तीन सामान्य सिद्धांतों का प्रतिपादन किया, जिनके आधार पर उत्तर-पूर्वी भारत के विकास के लिए राष्ट्रीय नीति बनायी जानी चाहिए। ये सिद्धांत हैं—

1. पहाड़ी और मैदानी लोगों के बीच एक पारस्परिक, शोषण-रहित अन्योन्याश्रित अर्थव्यवस्था के निर्माण पर खास बल होना चाहिए।
2. सांस्कृतिक नीति अत्यंत अनुमतिबोधक और उदारतापूर्ण होनी चाहिए, जिसमें विभिन्न जनजातियों अथवा जनजातियों के समूह स्वायत्त रूप से विकास करने की सुविधाएं पर्याप्त मात्रा में प्राप्त कर सकें।
3. राजनीतिक रूप से अलग होने की किसी भी मांग को लेकर बातचीत नहीं होनी चाहिए। यह बात स्पष्ट और दृढ़तापूर्वक उन सब जनजातीय नेताओं को बता दी जानी चाहिए, जो कि इस प्रकार की राष्ट्रविरोधी मांगों में लिप्त हैं।

मेरे विचार में यह सबसे स्पष्ट नीति-निर्देश था, जो कि उत्तर-पूर्वी भारत की अंतर्राष्ट्रीय सीमा पर स्थित हमारे विशिष्ट जनजातीय क्षेत्रों के लिए प्रतिपादित किया गया है।

12

अनुसूचित जातियों और जनजातियों के आयुक्त

1967 में भारत के राष्ट्रपति ने निर्मल बोस को एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक पद स्वीकार करने को कहा। यह था अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के आयुक्त का पद। जुलाई, 1967 में उन्होंने पदभार संभाला। अपेक्षित था कि वे समय-समय पर राष्ट्रपति और संसद को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करें और बतायें कि अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के संबंध में जो वैधानिक व्यवस्थाएं हैं, वह देश के सभी राज्यों अथवा केंद्र शासित राज्यों में किस प्रकार लागू की जा रही हैं।

बोस ने अपने कार्य को अपनी विशिष्ट सामाजिक उत्तरदायित्वपूर्ण भावना, उत्साह और सूक्ष्म दृष्टि के साथ शुरू किया। उन्होंने अपने उपायुक्त श्री बिमलचंद्र के साथ यह निर्धारित करने के लिए विस्तारपूर्वक विचार-विमर्श किया कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के संबंध में क्या और किस प्रकार के आंकड़े पूरे देश से एकत्रित करने हैं। वे अपने कार्यालय स्थित शोध खंड के तेजी से विस्तार के पक्ष में नहीं थे। उनकी इच्छा थी कि केवल कुछ प्रतिबद्ध शोधकर्ता हों, जिनके साथ वे विचार-विमर्श तथा निदानात्मक सर्वेक्षण कर सकें। उनके विचार में बाकी काम आयुक्त के दफ्तर के मौजूदा अधिकारियों से अच्छी तरह हो जायेगा; और फिर देश-भर में फैले क्षेत्रीय उपायुक्तों के दफ्तरों का स्टाफ था, एंथ्रोपोलाजिकल सर्वे आफ इंडिया था, अनुसूचित तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए राज्यों के शोध संस्थान थे, भारत के रजिस्ट्रार जनरल का दफ्तर था और पिछड़े वर्गों पर महानिदेशक का दफ्तर था। और फिर, वे अपने विस्तृत दौरों और अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के सदस्यों से गंभीर विचार-विमर्श पर निर्भर रहना चाहते थे। वे निश्चय कर चुके थे कि आयुक्त के प्रतिवेदन और उसके मूल सुझावों को केवल सूचनात्मक ही नहीं, बल्कि शिक्षात्मक होना चाहिए, जिससे राजनीतिज्ञ, प्रशासन तथा विद्वान पूरा लाभ उठा सकें।

उन्होंने पूरे देश का विस्तृत भ्रमण किया, विशेषकर उत्तर-पश्चिमी हिमालय क्षेत्र का। जहां भी वे गये, जहां तक संभव हुआ, उन्होंने अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों की स्थिति का गहरा अवलोकन किया। नव स्थापित विशिष्ट वर्ग और सामान्य वर्ग से बातचीत के आधार पर उन्होंने उन्हें अपनी प्रगति की समस्याओं पर

समझाने को कहा। वे अपने और उनके बीच पद का अंतर नहीं रखना चाहते थे और न ही केवल अधीनस्थ क्षेत्रीय अधिकारियों के प्रतिवेदनों और स्थानीय प्रशासकों पर निर्भर रहना चाहते थे। अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के मुख्य प्रवक्ताओं से अपने विचार-विमर्श में उन्होंने यह प्रयत्न किया कि वे लोग अपनी स्थिति को एक स्थानीय, क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर विकसित होते एक बृहत सहयोगी अंतर्निभरता के परिप्रेक्ष्य में देखें। उन्होंने उन लोगों से भी मिलने का प्रयास किया, जो इतने मुखरित नहीं थे और उनकी स्थिति का भी निरीक्षण किया।

जिसने भी 1967-68, 1968-69 और 1969-70 के अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति विषयक आयुक्त के प्रतिवेदनों के सामान्य सर्वेक्षणों को सामान्यतः आंशिक रूप से पढ़ा है, वह देख पायेगा कि यह प्रतिबद्ध राष्ट्रवादी सामाजिक विचारक का कार्य है, जो 'कमजोर में भी सबसे कमजोर' के प्रति गहरी सहानूभुति रखता है, अपने विश्लेषण में पूरी तरह स्पष्ट है और जिसने व्यापक परिप्रेक्ष्य को छोड़ा नहीं है। इस समस्या पर उनकी सोच पर गांधीवादी दर्शन का भी प्रभाव था—आत्मनियंत्रण और दूसरे समूहों से अन्योन्याश्रय का सिद्धांत। उनका मत था कि उनका कार्य केवल अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के रक्षक के रूप में उनके हितों को देखने का ही नहीं है। उनकी विशेष रुचि इसे जानने में थी कि वह कहां तक स्वयं अपने हितों की रक्षा के लिए संगठित हो पायेंगे और एक समतावादी राष्ट्रीय सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में भाग ले सकेंगे।"

आगे आने वाले पृष्ठों में हमारे भारतीय मित्रों के 94, 254, 592 की वर्तमान स्थिति का वर्णन किया गया है, जो कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्य हैं··· यह रिपोर्ट नयी दिल्ली कार्यालय में लिखी गई है, लेकिन यह आयुक्त द्वारा की गई हजारों मील की यात्रा का, उसके अधीनस्थ लोगों द्वारा अनेक बार की गई मीलों लंबी यात्रा का, और गणतंत्र के हर राज्य से वर्ष में प्रत्येक सप्ताह कार्यालय में आने वाली रिपोर्टों का प्रतिनिधित्व करती है। आयुक्त और उनके कर्मचारियों को पूरी आशा है कि इन पृष्ठों को ध्यानपूर्वक पढ़ा जायेगा। लेकिन निम्नलिखित बातें विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं और आशा है कि जैसे-जैसे पाठक रिपोर्ट को पढ़ता जायेगा, ये बातें स्पष्ट होती जायेंगी:

(I) ग्रामीण भारत के लोग जाति-आधारित अर्थव्यवस्था से निकलकर जाति-विरोधी अर्थव्यवस्था की ओर जा रहे हैं।

(II) अनुसूचित जाति के सभी लोगों या अनुसूचित जनजातियों को एक अकेली इकाई मानना पर्याप्त नहीं है। उनके विभिन्न वर्गों के लिए अलग कार्यक्रम बनाने की आवश्यकता है··· [59]

हम पाते हैं कि आयुक्त की रिपोर्ट में भारतीय जनसंख्या के 'सबसे कमजोर सूत्र' पर भी जोर दिया गया है :

"...अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए विशेष सरोकार के कारण कुछ वर्गों में एक गलत विचार बन गया है कि अनुसूचित जनजाति के सभी सदस्य शोषित वर्ग में आते हैं और उच्च जाति के लोग उनके शोषक हैं। यह इस तथ्य को नजरअंदाज करता है कि उच्च जाति के लोग स्वयं भी शोषकों और शोषितों में बंटे हो सकते हैं, जबकि इसी प्रकार का विभाजन जनजातीय समुदायों में भी विद्यमान हो सकता है। यह अविवेकी लोगों को दलितों के लिए विशेष सरोकार के प्रति रक्षात्मक दृष्टिकोण विकसित करने में प्रोत्साहन दे सकता है, जिससे अलग होने की और यहां तक कि अंततः अन्य लोगों से संघर्ष की भावना को उत्पन्न कर सकता है। यदि किसी का उद्देश्य शोषण को बिल्कुल समाप्त करना है तो यह मार्ग सर्वोत्तम होगा कि उन सब लोगों के लिए कार्य किया जाये, जो कि इसी प्रकार की परेशानियां उठा रहे हैं, चाहे वे किसी भी जाति या जनजाति के हों।"[60]

उसी प्रतिवेदन में बोस ने लिखा है कि शिकारी और जंगलों में घूम-घूमकर गुजर करने वाली खानाबदोश जनजातियों के लिए, जैसे बिरहोर का कबीला जो बिहार में पाये जाने वाले कबीलों की शृंखला में सबसे कमजोर कड़ी है, विशेष रूप से कोई प्रयत्न नहीं किया गया है।

रिपोर्ट के अंतिम भाग में बोस ने स्पष्ट किया है कि कुछ समस्याएं, जैसे गरीबी, गंदगी, शिक्षा का अभाव इत्यादि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के साथ-साथ भारतीय जनसंख्या के बहुत बड़े भाग के लिए भी गंभीर समस्याएं हैं। हालांकि अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों की कुछ विशेष समस्याएं हैं, जैसे भौगोलिक अकेलापन, अथवा सामाजिक अधीनीकरण, परंतु ये भी पूरे देश की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन लाये बिना सुलझाई नहीं जा सकतीं। उन्होंने सुझाव दिया—

"देश की मौजूदा स्थिति में यह स्पष्ट है कि अगर हम उन्हीं साधनों पर निर्भर होने का निर्णय लेते हैं जो इस समय हमें उपलब्ध हैं, हमारे लिए यही अच्छा होगा कि हम शिक्षा और व्यवस्था के माध्यम से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को स्वयं अपने ही प्रयत्नों से आधुनिक बनाने में मदद करें, हालांकि उन्हें सरकारी और गैरसरकारी संस्थाओं की व्यापक सहायता देनी होगी, क्योंकि सभी जातियां एक बदली हुई उत्पादक पद्धति में अपना उचित भाग प्राप्त कर सकती हैं, जिसे हम अपने देश में लागू करने का प्रयत्न कर रहे हैं। आत्मविकास के इस सकारात्मक उपागम से ही हम उन असमानताओं को दूर कर पायेंगे, जो हमें अपने मूल से प्राप्त हुई हैं।"[61]

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के आयुक्त के रूप में बोस ने जो तीन वर्ष नयी दिल्ली में बिताये, उनका पूरा लाभ उन्होंने भारत की जनता की परिस्थितियों के संबंध में अपने ज्ञान को और समृद्ध करने में उठाया। उन्होंने देश-भर में व्यापक रूप से भ्रमण किया और अनेक व्यक्तियों, प्रशासकों, राजनीतिक नेताओं, योजनाकारों और समाजशास्त्रियों से विचार-विमर्श किया। उन्हें पूरा विश्वास था कि अगर भारतीय

सामाजिक वास्तविकता पर आधारित एक संपूर्ण समाजवादी आर्थिक परिवर्तन का सैद्धांतिक ढांचा भारतवर्ष में स्थापित किया जाय तो भारत में अलगाववादी और संकीर्ण तत्वों को फैलने से रोका जा सकता है। उन्हें यह भी भरोसा था कि यह परिवर्तन समाज के निम्नतम स्तर से आरंभ करना होगा और उसे स्थापित करने के लिए जनाकांक्षा को संगठित करना होगा। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कई संपन्न नेता बोस द्वारा दिये गये इन सुझावों के विरुद्ध थे, क्योंकि इन सुझावों का मूल आधार यह धारणा थी कि सांप्रदायिक और जातीय सीमाओं को कठोर और स्थायी होने से रोका जाये।

उनके कुछ विचार उनके दो भाषणों में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किये गये। ये भाषण 'राष्ट्रीय एकीकरण की समस्याएं' शीर्षक से इंडियन इंस्टीट्यूट आफ एडवांस्ड स्टडीज, शिमला में 21 और 27 जून, 1966 को और 'भारतीय राष्ट्रवाद की समस्याएं' शीर्षक से ए.एस. सिन्हा इंस्टीट्यूट आफ सोशल स्टडीज, पटना में दिये थे।

बोस 1969 में गुवाहाटी विश्वविद्यालय में महात्मा गांधी पर अतिथि प्रोफेसर भी रहे। उनके भाषण 'गांधीवाद और आधुनिक भारत' शीर्षक से प्रकाशित किये गये। 1969 में उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय में विजयचंद्र मजूमदार भाषणमाला प्रस्तुत की, जिसका विषय था 'अनुसूचित जातियां तथा अनुसूचित जनजातियां : मौजूदा परिस्थिति'।

इंडिया इंटरनेशनल सेंटर, नयी दिल्ली में आयोजित विचार-गोष्ठियों में प्रोफेसर बोस ने भाग लिया। वे दिल्ली विश्वविद्यालय, देहली स्कूल आफ इकनामिक्स और आर्थिक विकास संस्थान में अक्सर जाते थे और नवयुवक विद्वानों, जैसे जोशी, टी.एन.मदान, आंद्रे बेतिल से विचार-विमर्श किया करते थे। उनके बातचीत के मुख्य विषय—भारतीय समाज की संरचना, परिवर्तन की प्रक्रिया और पुनर्निर्माण की समस्याएं होते थे। वे भारतीय समाजशास्त्रियों की इस प्रवृत्ति की प्राय: आलोचना करते थे कि वह अपनी देखी गई समस्याओं पर पश्चिमी विद्वानों की व्याख्या को बिना विचारे स्वीकार कर लेते हैं।

डा. पी.सी. जोशी ने, जो बाद में आर्थिक विकास संस्थान के निदेशक बने, दिल्ली में मुझे निर्मल कुमार बोस के साथ तत्कालीन मुलाकातों और उनसे हुए विचार-विमर्श के बारे में बताया—

''मैं दिल्ली विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग के आंद्रे बेतिल से पूछा करता था कि क्या कलकत्ता में तुम्हारे पास कोई हमारे गुरुओं राधाकुमुद, राधाकमल अथवा धूर्जटिप्रसाद की तरह कोई हुआ करता था? वह मुझे बताया करता था—'तुम निर्मल बाबू को एक प्रकार हमारे गुरु के समान समझ सकते हो।' परंतु आंद्रे उन दिनों एक रूढ़िभंजक दशा से गुजर रहा था। वह निर्मल बाबू की विद्वान के रूप में कमियां बताया करता था और विषय संबंधी नयी प्रगति के संबंध में उनकी अनभिज्ञता को उजागर करता था।''

"मैं राधाकमल, राधाकुमुद और धूर्जटिप्रसाद के प्रति श्रद्धालु था। मैं कहा करता था—उनके शिल्प को कड़ाई से मत जांचो, बल्कि उनके सिंहावलोकन की व्यापकता तथा अनुभूति को गहराई से परखो। वह एक भिन्न युग था, जब उन्होंने एक राष्ट्रीय अवस्थिति निर्धारित करने का बीड़ा उठाया था और जब उन्हें विद्वता के साथ सूक्ष्मदृष्टि का समन्वय करना पड़ा था।"

"तब एक निर्णायक भेंट हुई—शायद 1967 में। इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में 'सामाजिक परिवर्तन की योजना' पर एक सम्मेलन आयोजित किया गया था। देशमुख सत्र के अध्यक्ष थे। कई विद्वानों ने एक शक्तिशाली गांधीवादी दृष्टिकोण अपनाया था। मैंने एक वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। मैंने कहा—शायद गांधी और उनकी अहिंसा के कारण जो शोषित थे, वे स्वयं को शोषण करनेवालों के विरुद्ध संगठित नहीं कर पाये। गांधी ने अवतार और उद्धारक की भूमिका तो निभाई, पर वे जनसाधारण में क्रांतिकारी भावना जागृत नहीं कर पाये।"

"एक नौजवान का ऐसा निर्भीक कथन सुनकर उस सभा में कई विद्वान विचलित हुए। तब अचानक मैंने एक हृष्ट-पुष्ट लंबे व्यक्ति को, जिसने धोती-कुर्ता पहन रखा था, यह कहते सुना—'मेरे विचार में डा. जोशी ने सच्चे विश्वास और चिंतन से यह दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। हम यहां गांधीजी की प्रशंसा सुनने के लिए एकत्रित नहीं हुए। मैं असहमति की इस सच्ची आवाज का स्वागत करता हूं। डा. जोशी को अपने विचार विस्तारपूर्वक समझाने का एक अवसर इसके बाद के सत्र में देना चाहिए।"

"मुझे पता चला कि वह व्यक्ति निर्मल कुमार बोस था। मुझे उन्होंने आगे विचार-विमर्श के लिए दोपहर के भोजन पर मिलने का निमंत्रण दिया। भोजन के बाद वे मुझे अपनी कार में ले गये और मुझे बताया—'मैं आई.ई.जी. एन्कलेव में तुम्हारे घर तुम्हें ले चलता हूं' और कहा कि 'चलकर और विचार करेंगें।' वे इतने सरल, सीधे तथा स्नेही थे। वे मेरे घर आये और मुझसे पूछा, 'क्या तुमने गांधी द्वारा लिखी या गांधी पर रचित पुस्तकें पढ़ी हैं?' मैंने सोचना आरंभ किया और अचानक अनुभव किया कि मैंने बहुत पहले अपने दादा के साथ उनकी 'माई इक्सपेरिमेंट विद ट्रुथ' पढ़ी थी। उसके अलावा मैंने गांधी पर जो पुस्तकें पढ़ी हैं, वह केवल एक मार्क्सवादी या साम्यवादी की नजर से। बोस ने मुझे सुबह नाश्ते पर अपने घर बुलाया। हमने सादा-सा नाश्ता किया, लेकिन वातावरण बहुत अनौपचारिक तथा स्नेहपूर्ण था। उन्होंने कहा—तुम मेरी पुस्तकें 'सिलेक्शन फ्राम गांधी' और 'स्टडीज इन गांधीज्म' पढ़ना। शायद रुचिकर लगें। मेरी एक अन्य पुस्तक है 'माई डेज विद गांधी'। तुम्हें ये विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से शायद मिल जायें।"[62]

डा. जोशी ने गांधी पर बोस की पुस्तकें बहुत रुचि से पढ़ीं और उनसे कई बार और मुलाकात की। निर्मल बाबू अक्सर डा. जोशी के साथ अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के विकास की समस्याओं पर विचार-विमर्श करते थे। ये

वार्तालाप हमेशा सामाजिक चिंता की भावना से प्रेरित और एक खुले एवं मैत्रीपूर्ण वातावरण में होते थे।

जोशी टिप्पणी करते हैं—

"निर्मल बाबू जाति-व्यवस्था की सामाजिक वास्तविकता को पूरी तरह समझने में बहुत रुचि रखते थे। इस विषय में उनके बौद्धिक चिंतन को निर्धन वर्ग के लिए उनकी स्नेहशीलता ने समृद्ध बनाया था। वे नवजागरण के एक व्यक्ति की तरह थे, जिनमें बुद्धि, भावना तथा सूक्ष्म दृष्टि का समन्वय था..."

"मैं जब डी.पी. मुखर्जी, राधाकमल और निर्मल बाबू की तुलना करता हूं, तो अनुभव करता हूं कि डी.पी. मुखर्जी एक प्रतीकात्मक बंगला भद्रलोक बुद्धिजीवी थे, जो पुस्तकों और नगरीय संस्कृति से फलता-फूलता है, बौद्धिक रूप से गरीबों और कृपकों के प्रति उनकी सहानुभूति थी, परंतु जीवन के यथार्थ से उनका कोई सीधा संपर्क नहीं था। राधाकमल किताबी ज्ञान को क्षेत्रीय शोध से मिलाने में अधिक रुचि रखते थे, परंतु राधाकमल भी एकांत में रहने वाले विद्वान थे और सामाजिक परिवर्तन में अधिक रुचि नहीं रखते थे। निर्मल बाबू एक तरह से इन दोनों से बेहतर थे। उनका संप्रेषण का साधन मुख्य रूप से मौखिक था। जनसाधारण से इस प्रकार के निकट संपर्क से उन्होंने कुछ सीखा और शायद गांधी की संप्रेषण-प्रणाली से भी।"[63]

जोशी ने यह भी कहा कि निर्मल बाबू को इस बात से बहुत पीड़ा होती थी कि स्वतंत्रता के बाद के युवा समाजशास्त्रियों की पीढ़ी यूरोपीय-अमेरिकी अवधारणाओं और विशिष्ट शब्दावली से अधिक प्रभावित है, और सामाजिक यथार्थ को समझने के लिए अपने निरंतर प्रयासों से कोई विशेष सैद्धांतिक उपकरण विकसित करने का कोई प्रयत्न नहीं करती। वे आगे कहते हैं—"निर्मल बाबू की वास्तविक शक्ति उनकी एकनिष्ठ क्रांतिकारी तथा मानवोचित कटिबद्धता से उत्पन्न होती थी। वह बहुत सक्रिय थे, परंतु कभी तनावग्रस्त नहीं होते थे। साथ ही वे किसी प्रकार की कुंठाओं से पीड़ित नहीं थे।"

मैंने डा. जोशी से अपनी भेंटवार्ता को विस्तारपूर्वक उद्धृत किया है, क्योंकि उससे स्पष्ट होता है कि उनके जीवन में किसी प्रकार का अलगाव अथवा विभाजन नहीं था। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के आयुक्त के रूप में उनका अधिकतर जीवन—जीवन के हर रूप में साधारण ग्रामीणों और नागर लोगों के साथ पारस्परिक व्यवहार तथा युवा विद्वानों के साथ अपने विचारों और रुचियों को बांटने में वे एक जैसे ही थे। वे निरंतर काम करनेवाले व्यक्ति थे, निरंतर सीखनेवाले और निरंतर शिक्षा देने वाले।

इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि अपने व्यस्त सरकारी कार्यक्रम के बीच भी बोस को 'मैन इन इंडिया' और 'भारत कोष' (बंगला में भारत पर विश्वकोष था), जो कि बंगीय साहित्य परिषद द्वारा प्रकाशित हो रहे थे, के प्रति अपने संपादकीय उत्तरदायित्व को पूरी तरह निभाने की चिंता रहती थी। 1968 से 1971 तक वे एंथ्रोपोलाजिकल सर्वे आफ

इंडिया की परामर्शदात्री समिति के अध्यक्ष भी रहे और उसके व्यापक पुंनर्गठन में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

22 जनवरी, 1970 को बोस का 69 वां जन्मदिन था। भारतीय मानव वैज्ञानिक सभा ने इस अवसर को अप्रत्याशित रूप से एक उत्साहपूर्ण आयोजन में बदल दिया। उसने तीन दिवसीय विचार गोष्ठी का आयोजन किया, जिसका विषय था 'कलकत्ता का सांस्कृतिक परिदृश्य।' प्रोफेसर बोस ने सभी सत्रों में सक्रिय भाग लिया और अंतिम सत्र की अध्यक्षता करते हुए एक स्मरणीय मूल्यांकन प्रस्तुत किया—

''आज इस संध्या बेला में मैं आपके सम्मुख गहरे कृतज्ञ भाव से खड़ा हूं। मुझे यह भी नहीं बताया गया था कि कलकत्ता में यह विचार गोष्ठी मेरी 70 वीं वर्षगांठ पर आयोजित की जा रही है। इससे मैं एक असमंजस की स्थिति में हूं, क्योंकि मैंने सदैव अपनी आयु को भुलाने का प्रयत्न किया है... मैं अपनी बात अपने मित्र श्री राधारमण मित्र की टिप्पणी से आरंभ करूंगा। उन्होंने कहा था कि हमारे बौद्धिक प्रयत्नों से अंतत: किसी प्रकार का नैतिक कार्य आरंभ होना चाहिए। उससे उस कष्ट और गरीबी को, जो हमारे चारों और फैली है, हटाने में सहायता मिलनी चाहिए और अगर बुद्धिजीवी अपने आपको इस कार्य के प्रति समर्पित नहीं करते तो उनके महान व्यवसाय किसी काम के नहीं। मैं राधारमण बाबू के इस मत से पूरी तरह सहमत हूं। परंतु मैं बड़ी नम्रता के साथ उनको भी यह याद दिलाना चाहता हूं कि कई लोगों की यह आदत होती है कि वह अधिक बौद्धिक तैयारी किये बिना ही कार्यक्षेत्र में उतर पड़ते हैं। इसी दृष्टिकोण से मैं मानता हूं कि बौद्धिक कार्य और अभ्यास नैतिक क्रिया को सार्थक और प्रभावशाली बनाने के लिए बहुत हद तक आवश्यक है। हमें याद रखना चाहिए कि मार्क्स और लेनिन भी समय-समय पर पुस्तकालयों की गहराइयों में खो जाते थे, ताकि उन आर्थिक अथवा सामाजिक परिस्थितियों पर अधिक स्पष्टता से विचार कर सकें, जो उनके सामने थीं। अगर यह विचारगोष्ठी, जिससे आप हम सब जुड़े हैं, हमें यह स्पष्ट रूप से देखने में सहायक हो कि कलकत्ता में क्या हो रहा है और उससे अगर हम स्वयं को वैचारिक मुक्ति के कार्य के प्रति समर्पित करें, क्योंकि वही हर प्रकार की मुक्ति का पूर्वाभास है—तो मेरे विचार में यह विचारगोष्ठी अपने तात्कालिक उद्देश्य की पूर्ति में बहुत हद तक सफल होगी।''[64]

13

अंतिम दो वर्ष

30 जून, 1970 को तीन वर्ष की अवधि समाप्त होने पर बोस दिल्ली से वापस अपने पुराने परिचित नीड़—37 बोसपाड़ा लेन, उत्तरी कलकत्ता पहुंच गये, जहां उनकी रिश्ते में एक विधवा बहन विभामयी देवी बहुत स्नेह और ध्यान से उनकी देखभाल करती थी। एक विचारक और कार्यकर्ता के रूप में प्रोफेसर बोस दिल्ली में अपने स्वनिर्धारित कार्यों को पूरा करके संयत भाव से कलकत्ता लौट आये थे। मुझे नहीं लगता कि उन्हें अपनी जीवन-व्यवस्था को बदलने में आधा दिन भी लगा होगा। हर जगह वे अपने साथ स्वतंत्रता का वातावरण लेकर चलते थे। उनके दिन व्यस्त होते थे और घर सदैव खुला रहता था—जो भी आये, उसका स्वागत करने के लिए और उसे सान्निध्य देने के लिए। और पहले की तरह ही 'मैन इन इंडिया', 'भारत कोश' और 'बंगीय साहित्य परिषद' उन्हें व्यस्त रखे हुए थे। वे एक मौलवी से हर सुबह आधे घंटे उर्दू भी सीखने लगे थे।

कलकत्तावासी फिर एक 70 वर्षीय जोशीले 'नवयुवक' निर्मल बाबू को अपनी मनपसंद बी.एस.ए. साइकल पर अपने कामों में व्यस्त देख सकते थे। कई बार वे अपनी आदत के अनुसार श्याम बाजार से लेकर बालीगंज तक (जो करीब दस किलोमीटर की दूरी है) कालेज स्क्वायर क्षेत्र में सड़क किनारे लगे बुक स्टालों पर पुस्तकें खरीदते थे।

उनके घर के आसपास का क्षेत्र—श्याम बाजार और बाग बाजार—1969-71 में नक्सलवादी, सी.पी. आई. एम.एल. द्वारा संचालित नगरीय विद्रोह का एक प्रमुख केंद्र था। निर्मल बाबू अहिंसा के उपासक थे, लेकिन उन्होंने कलकत्ता के अन्य भद्रलोक की तरह युवाओं द्वारा की जा रही अर्थहीन हिंसा की निंदा नहीं की। वे उनके दृष्टिकोण को भी समझना चाहते थे और बीमारी की जड़ तक पहुंचना चाहते थे। उनका विचार था कि हमारे सामाजिक जीवन में फैली हुई सड़ांध को समझने का प्रयत्न अब भी किया जा सकता है और समाज में जनसाधारण और युवाओं की संस्कृति के पुनर्निर्माण की योजना बनाई जानी चाहिए।

निर्मल बाबू यह भी सोचते थे कि अब उन्हें कुछ समय मिलेगा और वे मंदिरों पर एकत्रित अपनी ढेर सारी सामग्री को अंतिम रूप दे पायेंगे, जिसे उन्होंने उचित रूप

से वर्गीकृत किया हुआ था। वे दक्षिण जाकर कुछ मंदिरों की संरचना के परिमाप नापना चाहते थे और कुछ पहले ली गई नापों को जांचना चाहते थे। परंतु उनकी यह इच्छा अधूरी ही रही।

1971 की जुलाई में मैंने सुना कि निर्मल बाबू लखनऊ की एक यात्रा के बाद रांची रुकते हुए कलकत्ता लौटे हैं और गंभीर रूप से बीमार हैं। हमें उन्हें बीमार देखने की आदत नहीं थी। वे सदैव शारीरिक और मानसिक स्फूर्ति के एक प्रतीक थे। मैं उन्हें बोसपाड़ा लेन में देखने गया। वे बिस्तर में बैठे 'मैन इन इंडिया' के प्रूफ ठीक कर रहे थे, परंतु कुछ कमजोर दिखाई देते थे। उनके चेहरे पर पीड़ा के चिह्न साफ दिखाई दे रहे थे। उन्होंने बताया कि एक होमियोपैथिक डाक्टर उनकी चिकित्सा कर रहा है, और उन्हें आशा है कि वह जल्द स्वस्थ हो जायेंगे, और मंदिरों पर अपना काम पूरा कर भारत के विभिन्न भागों में आयोजित चालीस बड़े सत्याग्रह आंदोलनों का एक आलोचनात्मक निरीक्षण आरंभ करेंगे। मैं चिंतित भाव से घर लौटा। वे बहुत कमजोर और क्षीण लग रहे थे।

एक सप्ताह बाद उनकी हालत बिगड़ गई और उन्हें पार्क व्यू नर्सिंग होम ले जाया गया। नर्सिंग होम की डाक्टर—डा. अनवार खातून ने कुछ दिन बाद बताया कि बायप्सी रिपोर्ट से पता चलता है कि प्रास्ट्रेट-क्षेत्र में कैंसर है। मैंने उनसे पूछा कि क्या निर्मल बाबू को अपनी बीमारी के बारे में बताया गया है ? उन्होंने कहा कि प्रोफेसर बोस मंदिरों पर अपने कार्य को पूरा करने के लिए इतने उत्सुक थे कि उनके रिश्तेदारों की इच्छा थी कि उनकी सांघातिक बीमारी के बारे में उन्हें न बताया जाए। प्रोफेसर बोस को बताया गया था कि वह गठिया से पीड़ित हैं। कुछ दिनों बाद उनका आपरेशन किया गया और वे अस्थायी रूप से कुछ स्वस्थ हुए। वे बोसपाड़ा लेन वापस चले गये, परंतु अब वे अधिक चल-फिर नहीं सकते थे और पूरी मेडिकल देखभाल में थे।

उनके बहुत-से मिलनेवालों में एक अमरीकी मानव वैज्ञानिक युवती भी थी—ईवा फ्रीडलैंडर, जो दुर्गापुर स्टील कारखाने के आसपास के ग्रामीण क्षेत्र (जिसे गोपाल मठ के नाम से जाना जाता था) के पारिवारिक जीवन पर कारखाने के प्रभावों पर शोध कर रही थी। ईवा 1967 और 1968 में निर्मल बाबू से कई बार मिली थीं और जो कुछ वे करते हैं, उसके प्रति उनके संपूर्ण समर्पण से बहुत प्रभावित थीं। उन्हें यह भी बहुत पसंद था कि जब भी वे किसी समस्या पर विचार-विमर्श करते थे तो उसे एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करते थे—

"जब मैं इतिहास कहती हूं तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि क्या हुआ, केवल इसी का वर्णन हो—घटनाओं का एक अमूर्त वर्णन—बल्कि उन ऐतिहासिक घटनाओं में उनका व्यक्तिगत लगाव और व्यक्तिगत पर्यवेक्षण; और ऐसा इतिहास जो स्वकेंद्रित नहीं था, फिर भी जिसमें उनका लगाव महत्वपूर्ण था... एक मानव वैज्ञानिक होने के नाते वे इस बात में बहुत रुचि रखते थे कि वे क्यों कार्य करते हैं।"[65]

निर्मल बाबू जब नर्सिंग होम से लौटकर बोसपाड़ा लेन लौटे तो ईवा उन्हें मिलने आई। उसने उनसे कहा कि वह कुमारटोली के मूर्तिकारों से मिलना चाहेगी और वह स्थान उनके घर से केवल आधा मील दूर था। निर्मल बाबू ने कहा कि वह उसे मूर्तिकारों के कुछ परिवारों से मिलायेंगे। ईवा ने मुझसे कहा—

''मुझे उनके स्वास्थ्य की चिंता थी। परंतु वे मुझे उन मूर्तिकारों तक ले जाने का आग्रह करने लगे। अपनी सांघातिक बीमारी के बावजूद उनमें बहुत स्फूर्ति थी। वे मुझसे तेज चलते थे। वह नक्सलवाद का जोर था। बमों के भय से सड़कें खाली रहती थीं। वे मुझे एक संकरी गली से एक छोटे-से मकान में ले गये। कुछ लोग मिट्टी की मूर्तियां बना रहे थे। वे बैठ गये। कुछ प्रश्न किये—श्रम-विभाजन, मूर्ति के निर्माण और चित्रण की तकनीक, किस प्रकार कच्चा माल एकत्रित किया जाता है, और राजनीतिक स्थिति के संबंध में भी कुछ प्रश्न पूछे। सड़कों पर हो रही लड़ाई इत्यादि के बारे में भी पूछा।''

''किसी परिवार में इतनी सुगमता से घुलमिल जाने की उनकी क्षमता ने मुझे बहुत प्रभावित किया। वे निश्चिंतता के साथ, एक बराबरी के स्तर पर उनसे घुलमिल गये थे··· मैंने यह सब बाते उनके व्यवहार में देखी हैं। वे अन्य सबसे भिन्न हैं—केवल अन्य बंगालियों ही से नहीं··· उनके संबंध में मेरी राय है कि वे अध्ययन तथा सामाजिक कार्यों में एक असाधारण संतुलन स्थापित करने से सफल हुए थे—जो हममें से बहुतों के लिए बहुत कठिन होता है··· मेरे अमेरिका लौटने से पहले वे बहुत बीमार हो गये थे और मैंने उनसे पूछा था कि क्या वे कोई दवा ले रहे हैं? उन्होंने कहा था कि वह किसी प्रकार की दर्दनाशक दवाएं नहीं लेना चाहते, क्योंकि इससे मस्तिष्क में धुंधलापन आ जाता है··· मैं सोचती हूं कि उनमें सबसे प्रभावशाली बात यह थी कि भारत में नये समाज को विकसित करने के प्रति उनके पास एक सुसंगत, नितांत अटल नजरिया था। अमूर्त प्रश्नों से वे वहीं तक जुड़े थे, जहां तक उनसे ठोस परिवर्तन लाने में कोई सहायता मिले।''[66]

अस्थायी रूप से ठीक होने के छह महीने बाद, वे फिर से बीमार हो गये, और फिर पार्क व्यू नर्सिंग होम ले जाये गये। इस बार उन्हें उनकी बीमारी के बारे में बता दिया गया। उन्होंने उसे सही ढंग से लिया, पर अनुभव किया कि उन्हें पहले ही बताने में हिचकिचाना नहीं चाहिए था। वे अपना समय अधिक ध्यान से खर्च करते। उन्होंने अपने चिकित्सकों से पूछा कि क्या वह उन्हें दक्षिण भारत की यात्रा के लिए स्वस्थ कर सकते हैं, क्योंकि वहां उनके कुछ विद्यार्थी उनके निर्देशन में मंदिरों को नापने का कार्य पूरा करेंगे। डाक्टर ने कहा कि उन्हें कुछ और स्वस्थ होने तक प्रतीक्षा करनी चाहिए। मैं मानव वैज्ञानिक सर्वे कार्यालय से घर लौटते समय उनसे रोज मिलता था। अपने बिस्तर से वे 'मैन इन इंडिया' के प्रूफ पढ़ने का अपना कार्य नियमानुसार करते रहे और 'एशियाटिक सोसायटी' के अध्यक्ष पद की जिम्मेदारियां और बुरी तरह से गुटबंदी से जकड़ी 'बंगीय साहित्य परिषद' के अध्यक्ष का उत्तरदायित्व भी निभाते रहे।

जब भी हम उनसे मिलते थे, वे तत्काल एंथ्रोपोलाजिकल सर्वे आफ इंडिया के विभिन्न सदस्यों द्वारा किये जा रहे कार्यों में व्यापक रुचि लेते थे।

प्रसिद्ध मूर्तिकार मीरा मुखर्जी प्रोफेसर बोस द्वारा एंथ्रोपोलाजिकल सर्वे आफ इंडिया की सीनियर रिसर्च फैलो नियुक्त की गई थीं, ताकि वह पूरे भारत में धातुई शिल्पकारों से संबंधित अध्ययन कर सकें। प्रोफेसर बोस बहुत चाहते थे कि उनकी पांडुलिपि प्रेस में प्रकाशन के लिए भेजी जाए। अपने बिस्तर पर ही उन्होंने बड़े ध्यान से पांडुलिपि को देखा और कुछ परिवर्तन किये। मीरा मुखर्जी ने मुझे बताया—

"उनके अधीन एक शोधकर्ता के रूप में काम करते हुए मैं—एक ऐसी कलाकार-मूर्तिकार, जिसका शैक्षणिक आधार नहीं है—इस बात से प्रोत्साहित हुई कि वे मेरे सर्वेक्षण और व्याख्याओं पर ध्यान देते थे। उनका मस्तिष्क असाधारण रूप से तीक्ष्ण था। वे बहुत सरलता से किसी भी समस्या की जड़ तक पहुंच सकते थे और कभी भी क्षेत्र में किये गये मेरे पर्यवेक्षण की अवहेलना नहीं करते थे··· वास्तव में मैं बंगाल में उनके कई सम्मानित समकालीनों से उनकी तुलना नहीं कर सकती। उनकी कुछ स्वभावगत विलक्षणता और प्रत्यक्ष कमजोरियों के बावजूद मैं उनके असाधारण व्यक्तित्व, संवेदनशीलता, सहजशीलता, और गंभीर सौंदर्यबोध की भावना से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी··· मुझे सदैव यह प्रतीत हुआ कि वे महान कार्य में डूबे हैं··· एक महान व्यक्तित्व। उनके मौन में दूसरों की हर जरूरत पूरा करने की एक कोमल इच्छा अंतर्निहित थी।··· अन्य 'ज्ञानी' व्यक्तियों की तरह उन्होंने अन्वेषण की अपनी इच्छा को कभी समाप्त नहीं किया था—वह एक न खत्म होनेवाली खोज थी··· उनके व्यक्तित्व में पश्चिम और हमारे देश की श्रेष्ठ विशेषताओं का सम्मिश्रण था।"[67]

विश्वनाथ बैनर्जी, कलकत्ता विश्वविद्यालय में मानव विज्ञान में रीडर थे। वे निरंतर प्रोफेसर बोस से मिलने आते थे और भारतीय समाज के गठन और यहां हो रहे परिवर्तनों की अध्ययन पद्धतियों के संबंध में उनके विचारों को लिख लेते थे। बोस प्रसन्न थे कि आंद्रे बेतिल ने उनकी पुस्तक 'हिंदू समाज का गठन' का अनुवाद आरंभ कर दिया है और वह ओरियेंट लांगमैन एंड कं. द्वारा प्रकाशित की जायेगी।

मानव वैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों और पुरातत्ववैज्ञानिकों के अलावा बोस से मिलने आनेवालों में कई प्रसिद्ध व्यक्ति भी थे— सुनीति चैटर्जी, सत्येन बोस, रमेश मजूमदार, सुशोभन सरकार, गोपाल हलदर , सौमेंद्रनाथ ठाकुर, कृष्ण कृपलानी और कई अन्य। जाने-माने राजनीतिक नेता और गांधीवादी कार्यकर्ता प्रफुल्लचंद्र सेन, अतुल्य घोष, त्रिदिव चौधरी, विजयचंद्र भट्टाचार्य, अनिल छंदा, एल.एम. श्रीकांत और कई अन्य। अतुल्य घोष निर्मल बाबू का दिल बहलाने अक्सर आते थे। वह अक्सर स्वतंत्रता-आंदोलन के दिनों में घटी मजेदार घटनाओं, विशेषकर जेलों में घटी घटनाओं पर बातचीत करते थे।

अपनी बीमारी के दौरान उन्होंने 16 लेख, कई समीक्षाएं और 3 पुस्तकें अंग्रेजी में तथा 13 समीक्षाएं और 4 निबंध संकलन बंगला में प्रकाशित कराये।

बोस डेढ़ वर्ष की इस अवधि में लगभग अपने कमरे और बिस्तर तक ही सीमित रह गये थे, परंतु इस दौरान भी उन्होंने कुछ महत्वपूर्ण बैठकों और विचारगोष्ठियों में हिस्सा लिया। 1972 में कलकत्ता विश्वविद्यालय में मानव विज्ञान विभाग की स्थापना के 50 वर्ष पूरे होने पर आयोजित स्वर्ण जयंती समारोह में उन्होंने सक्रिय भाग लिया। एशियाटिक सोसायटी में उन्होंने तारकचंद्र दास स्मृति भाषण दिया, जो कि भारतीय मानव विज्ञान सभा के तत्वावधान में किया गया था और जिसका शीर्षक था 'भारतीय समाज के मानव वैज्ञानिक अध्ययन की पद्धति'। प्रोफेसर बोस ने पूर्वी इंडियन काउंसिल आफ सोशल साईंस रिसर्च के तत्वाधान में आयोजित विचार गोष्ठी में भी भाग लिया। जैमिनी राय के देहांत पर एकेडमी आफ आर्ट्स में आयोजित एक स्मृति सभा में भी उन्होंने भाषण दिया और नवंबर 1971 में एक बहुत ही पैना भाषण जगदीशचंद्र बोस स्मृति भाषणमाला के अंतर्गत बोस इंस्टीट्यूट में दिया, जिसका शीर्षक था—'भारतीय सभ्यता का मानव वैज्ञानिक दृष्टिकोण'।

जुलाई 1972 में ओस्लो विश्वविद्यालय के प्रोफेसर फ्रेड्रिक बर्थ आई.सी.सी.एस.आर. के अतिथि के रूप में कलकत्ता आये। वह कलकत्ता का एक निर्देशित दौरा करना चाहते थे और उस पर एक विहंगम दृष्टि डालना चाहते थे। मुझे तत्काल यह लगा कि मुझे डा. बर्थ को प्रोफेसर बोस के पास नर्सिंग होम ले जाना चाहिए। निर्मल बाबू ने एक जानकार के रूप में उन्हें बताया कि नगर के विकास, उसके क्षेत्रों और स्थापत्य-इतिहास को सही रूप से समझने के लिए उन्हें खोज का कौन-सा रास्ता अपनाना चाहिए। मुझे उनकी सारगर्भित और बुद्धिमत्तापूर्ण हिदायतों को टेप पर रिकार्ड कर लेना चाहिए था। हमने उनकी हिदायतों का पालन किया। प्रोफेसर बोस बड़े संतुलित ढंग से, समय और काल में अनुपात बिठाकर ही कोई सामाजिक टिप्पणी करते थे। कैंसर के एक बीमार में ऐसी मानसिक सजगता और सुरुचि को देखकर बर्थ बहुत प्रभावित हुए।

नेशनल बुक ट्रस्ट के तत्कालीन निदेशक के.एस. दुग्गल भी नर्सिंग होम आये और प्रोफेसर बोस को बताया कि उनकी पुस्तक 'भारतीय आदिवासी जीवन' (Tribal Life in India) अभी-अभी प्रकाशित हुई है। बोस ने दुग्गल से कहा, "आप देखते हैं कि अब अंत सामने खड़ा है। अगर मुझसे कुछ लेना चाहते हो तो मेरे पास अधिक समय नहीं बचा। तुम मुझे शीघ्र ही बता देना।" श्री दुग्गल ने सुझाव दिया कि प्रोफेसर बोस एक पुस्तक लिखें, जिसका शीर्षक हो 'कुछ भारतीय जनजातियां' (Some Indian Tribal) बोस ने पांडुलिपि तो तैयार कर ली थी, परंतु यह उनके देहांत के बाद ही प्रकाशित हुई।

मेरी उनसे अंतिम मुलाकात 5 अक्तूबर, 1972 को हुई, जब वे अपना सिर भी नहीं हिला सकते थे। मुझे उन्होंने बताया कि बीमारी उनके सिर के पिछले हिस्से तक फैल

गई है। परंतु उनका मस्तिष्क सजग था। मैं जब चलने को हुआ तो उन्होंने मेरा हाथ मजबूती से पकड़ा। शायद वे मुझे यह बताना चाहते थे कि उन्हें पूरी आशा है कि उनके विद्यार्थी-जीवन और वैज्ञानिक अन्वेषण की चुनौतियों का स्वतंत्रता की भावना से मुकाबला करेंगे। उन्होंने कहा कि नर्सिंग होम में रहते-रहते वे थक गये हैं और दुर्गापूजा के दौरान महाष्टमी वाले दिन बोसपाड़ा लेन, अपने घर लौटना चाहते हैं।

8 सितम्बर, 1972 को उनकी डायरी में उनके अपने हाथों से लिखी हुई अंतिम टिप्पणी है—

"पार्क व्यू नर्सिंग होम :"

"आज सुबह मैंने अनिल को 'मैन इन इंडिया' के मार्च 1973 के अंक के लिए 6 लेख दिये। मोहन बाबू की सहायता से मैंने बाकी पत्रों के उत्तर दे दिये।"

" 'साइंटिफिक अमेरिकन' में प्रकाशित मेरे लेख की रायल्टी की सातवीं किश्त (105 डालर्स) प्राप्त हुई।"

"मैं आज दोपहर पार्क व्यू नर्सिंग होम आया। मेरा वजन 55 के.जी.।"

आखिरी कुछ दिनों में उन्हें बहुत अधिक पीड़ा रही और वे बेहोश रहे। 15 अक्तूबर को महाष्टमी थी। उस दिन मुझे टेलीफोन से संदेश मिला कि तड़के सुबह निर्मल कुमार बोस का देहांत हो गया है। मैं नर्सिंग होम पहुंचा, परंतु पता चला कि उनके पार्थिव शरीर को बोसपाड़ा लेन ले जाया जा चुका है। केवल मृत्यु ही उनके रचनात्मक जीवन को समाप्त कर सकी। सदा स्वायत्त प्रवृत्तिवाले, फुर्तीले, सीखने को सदैव तत्पर और अपने साथियों की सेवा करने के लिए हमेशा तैयार बोस जैसे व्यक्तित्व के निकट आना भी अपने आप में एक महान अनुभव था। हमें ज्ञात है कि चेतना के अंतिम क्षण तक भारतीय जनसाधारण की रचनात्मक प्रतिभा और उस सभ्यता में, जो उन्हें विरासत में मिली थी, उनका अटूट विश्वास बना रहा। हम उन्हें मानव विज्ञानों की व्यापक श्रृंखला को दिये गये उनके समृद्ध योगदान के लिए ही याद नहीं करेंगे, बल्कि मानव मात्र के प्रति उनके संपूर्ण समर्पण के कारण उन्हें सदैव याद रखेंगे। उनके जीवन से हमें टैगोर की एक कविता का स्मरण हो आता है—

'निशेषे प्राण जे कोरिबे दान क्षय नाई तर क्षय नाई!'

(निःशेष सीमा तक समर्पित जीवन कभी नष्ट नहीं होगा।)

टिप्पणियां तथा संदर्भ

1. 'जुआंग जाति', *नवीन ओ प्राचीन,* कलकत्ता 1949, पृ. 83
2. *विद्यार-व्यवहार,* वही पृ. 18-19
3. *सांस्कृतिक मानव-विज्ञान* की समीक्षा, कलकत्ता-1929 निर्मलकुमार बोस रचित ए.एल. क्रयोबर द्वारा *अमेरिकन एंथ्रोपोलाजी* एन.एस. खंड 32, 1930, पृ. 557
4. निर्मल कुमार बोस, *सांस्कृतिक मानव विज्ञान,* कलकत्ता-1929, पृ. 1
5. *वही,* पृ. 1-2
6. जे.बी.एस. हाल्डेन, 'पशुओं से मनुष्य तक की दलील : मानव विज्ञान के औचित्य का परीक्षण' जे.आर.ए.आई., खंड 86, भाग-2, जुलाई-दिसंबर, 1956, पृ. 1-14
7. निर्मल कुमार बोस, ऊपर उल्लिखित पुस्तक, पृ. 15.
8. भेंटवार्ता : खुदीराम चौधरी, बोलपुर, 22.11.1981
9. भेंटवार्ता : ब्रिगेडियर डी.एम.सेन, कलकत्ता, 14.10.1983
10. एन.के. बोस, *स्टडीज इन गांधीज्म,* अहमदाबाद, पृ. 58-65
11. *वही*
12. एन.के. बोस, *माई डेज विद गांधी,* कलकत्ता, 1953, पृ. 17-18
13. 'बंगालीर प्रतिष्टान', *नवीन ओ प्राचीन,* कलकत्ता, 1949, पृ. 162
14. 'बंगालीर चरित्र', वही, पृ. 173
15. 'रवींद्रनाथेर साधना' और 'तृष्णा', वही, पृ. 207-212 और 213-215
16. 'रवींद्रनाथेर छबि', वही, पृ. 217-218
17. 'बांगालीर स्थापत्य', वही, पृ. 173
18. एन.के. बोस और धरणी सेन, *एक्सकावेशंस इन मयूरभंज,* कलकत्ता, 1948, पृ. 3

19. भेंटवार्ता : गौतम शंकर रे, कलकत्ता, 7.3.1984

20. 'दि हिंदू मैथड आफ ट्राईबल एब्जार्पशन' *साईंस एंड कल्चर,* खंड 8 सं.4, 1941

21. 'विज्ञान शिक्षाकेर अभिज्ञाता', *नवीन ओ प्राचीन,* पृ. 28-33

22. वही, पृ. 42

23. 'बिहारे बांगाली', *नवीन ओ प्राचीन,* पृ. 174-182

24. एन.के. बोस, *माई डेज विद गांधी,* पृ. 19-21

25. 'निर्मल दा' : मनोरंजन गुहा द्वारा लिखित एक संस्मरण, शांतिनिकेतन से सुरजीत सिन्हा को प्रेषित, तिथि 24.4.1982

26. निर्मल कुमार बोस, *हिंदू समाजेर गरन,* कलकत्ता, 1949, पृ. 156

27. एन.के. बोस, *माई डेज विद गांधी,* पृ. 27-30

28. वही, पृ. 49

29. वही, पृ. 50

30. वही, पृ. 51

31. वही, पृ. 55

32. वही, पृ. 55-56

33. 'संन्यासी' *परिब्राजकेर डायरी,* कलकत्ता, 1959, पृ. 47

34. *माई डेज विद गांधी,* पृ. 76

35. 'आमुख', *सिलेक्शंस फ्राम गांधी,* एन.के. बोस द्वारा, अहमदाबाद,1948

36. *माई डेज विद गांधी,* पृ. 181

37. वही, पृ. 190-191

38. एरिक एरिकसन, *गांधी'स ट्रुथ: आन द ओरीजंस आफ मिलिटेंट नान-वायलेंस,* न्यूयार्क 1969, पृ. 405-406

39. 'प्रस्तावना' *माई डेज विद गांधी*

40. 'करेंट रिसर्च प्रोजेक्ट्स *इन इंडियन एंथ्रोपोलोजी, मैन इन इंडिया* खंड 32, सं. 3, 1952, पृ. 121-133

41. *फिफ्टी इयर्स आफ साईंस इन इंडिया: प्रोग्रेस आफ एंथ्रोपोलोजी एंड आर्कियोलोजी,* कलकत्ता,1963, पृ.1

42. 'सजेस्टिड रिसर्च प्रोजेक्ट्स इन इंडियन एंथ्रोपोलोजी', *मैन इन इंडिया,* खंड, 32, सं. 3, पृ. 121-133, 152

43. 'सजेशंस फार इंप्रूवमेंट्स इन मैथड आफ डेटिंग इंडियन टेम्पल्स', *भारतीय विज्ञान कांग्रेस ऐसोसियेशन की कार्यवाही,* 1949

44. निर्मल कुमार बोस, माडर्न बंगाल, कलकत्ता, 1959 पृ. 94-95

45. निर्मल कुमार बोस, 'कम्पेरेटिव स्टडी आफ सिविलाइजेशंस' *क्लचरल एंड सोसायटी इन इंडिया,* नयी दिल्ली, 1967, पृ. 280-298

46. निर्मल कुमार बोस, *डायरी एज कमीश्नर फार शड्यूलड कास्ट्स एंड शड्यूल ट्राईब्स,* 1967-1970 (टंकित प्रति), पृ. 167-172

47. निर्मल कुमार बोस, *वही,* पृ. 472-476

48. निर्मल कुमार बोस, 'भारत के संस्कृति क्षेत्र', *जिओग्राफिकल रिव्यू आफ इंडिया,* खंड 18, सं. 4, पृ. 1-12

49. निर्मल कुमार बोस, आमुख, *पीजेंट लाइफ इन इंडिया* : ए स्टडी इन इंडियन यूनिटी एंड डायवर्सिटी, कलकत्ता, 1961

50. *वही,* 'भूमिका'

51. बी.एन. सरस्वती, *कन्ट्रीब्यूशन टू द अंडरस्टैंडिंग आफ इंडियन सिविलाइजेशन,* धारवार, 1970 पृ. X-XI

52. निर्मल कुमार बोस, 'कलकत्ता: एक अकालिक महानगरी', *साइंटिफिक अमेरिकन,* खंड, 213, सं. 3, 1965, पृ. 102

53. सुरजीत सिन्हा, 'निर्मल कुमार बोस का मानव विज्ञान', *जर्नल आफ द इंडियन एंथ्रोपोलोजिकल सोसायटी,* 1972, पृ. 1-23

54. पन्नालाल दासगुप्ता (संपादित), ए कामन पर्सपेक्टिव फार नार्थ-ईस्ट इंडिया, कलकत्ता, 1967, पृ. XI-XIII

55. अन्नदा भावागबली : 'नोट्स आन ए टाउन आफ नेफा' (अरुणाचल प्रदेश) प्रोफेसर निर्मल कुमार बोस के साथ, : व्यक्तिगत संप्रेषण, 17 अप्रैल, 1984

56. *वही*

57. *वही*

58. प्रोफेसर निर्मल कुमार बोस के दौरे की डायरी, 19.4.1967

59. *रिपोर्ट आफ द कमीश्नर फार शड्यूलड कास्ट्स एंड शड्यूलड ट्राईब्स,* (1967-1968), नयी दिल्ली

60. *वही*

61. *वही*

62. भेंटवार्ता : डा. पी.सी. जोशी, निदेशक, आर्थिक विकास का संस्थान, नयी दिल्ली, 5.10.1983

63. *वही*

64. 'एड्रेस बाय प्रो. निर्मल कुमार् बोस', *कल्चरल प्रोफाइल आफ कैलकटा* (संपादित) सुरजीत सिन्हा, कलकत्ता, 1972, पृ. 262-270

65. भेंटवार्ता : डा. ईवा फेडलैंडर, न्यूयार्क, 2.11.1982

66. *वही*

67. भेंटवार्ता: श्रीमती मीरा मुखर्जी, कलकत्ता: 11.11.1983

कालक्रम

1901- 22 जनवरी, कलकत्ता में जन्म।

1917- पुरी जिला स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा पास।

1919- स्काटिश चर्च कालेज, कलकत्ता से इंटर (विज्ञान सहित) पास किया।

1921- प्रेसिडेंसी कालेज, कलकत्ता से बी.एससी. (जियोलाजी) आनर्स, एम.एससी. में प्रवेश, असहयोग आंदोलन के कारण कालेज छोड़ा। पूर्वी और पश्चिमी इंडीज और दक्षिण अफ्रीका से आये बंधुआ मजदूरों के एक शिविर का सी.एफ. एंड्रयूस के निरीक्षण में आयोजन। पुरी में बसे। मंदिर स्थापत्य कला का अध्ययन आरंभ।

1923- मानव विज्ञान में कलकत्ता विश्वविद्यालय में एम.एससी. में प्रवेश, 1925 में एम.एससी. सर्वोच्च नंबरों से पास की।

1926- उड़ीसा के पहाड़ी क्षेत्र में जुआंग जाति पर क्षेत्रीय कार्य। उत्तरी भारत के मंदिरों की स्थापत्य कला का 1923 से 1929 तक बराबर अध्ययन। हुगली समूह के गांधीवादी कांग्रेस कार्यकर्ताओं से जुड़े।

1929-30- कलकत्ता विश्वविद्यालय में शोधकर्ता, जाति-व्यवस्था में परिवर्तन पर शोधकार्य।

1930- अनुसूचित जातियों के लिए बोलपुर, बीरभूम में *खादी संघ* और शिक्षागार स्थापित किये। नमक सत्याग्रह में सम्मिलित हुए, दमदम सेंट्रल जेल में 1930-32 तक हिरासत में रहे।

1934- सेवाग्राम, वर्धा में गांधी से पहली मुलाकात। बोलपुर में गांधीवादी कार्यक्रम जारी।

1938- कलकत्ता विश्वविद्यालय के मानव विज्ञान विभाग में सहायक प्रवक्ता के रूप में नियुक्त।

1939-41- मयूरभंज में प्रागैतिहासिक खुदाई। मंदिर-स्थापत्य पर शोध जारी।

1942-45- अगस्त आंदोलन में सम्मिलित। अगस्त, 1942 से अगस्त, 1945 तक दमदम सेंट्रल जेल में बंदी।

1946- मानव भूगोल विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्रवक्ता नियुक्त। महात्मा गांधी के सचिव व दुभाषिये—नवंबर, 1946 से मार्च, 1947 तक नोआखाली में, और फिर मई से सितंबर, 1947 तक कलकत्ता में।

1948- एशियाटिक सोसायटी द्वारा एशियाई मानव विज्ञान के क्षेत्र में कार्य के लिए आनंडेल गोल्ड मैडल।

1951- *मैन इन इंडिया* के संपादक बने और आजीवन रहे।

1957-58- कैलिफोर्निया (बर्कले) विश्वविद्यालय दक्षिण एशिया अध्ययन केंद्र में अतिथि प्रोफेसर के रूप में आमंत्रित। स्टैनफोर्ड, केलिफोर्निया में एक अंतर्राष्ट्रीय विचार गोष्ठी में भाग लिया, विषय था— सभ्यताओं की तुलना।

1959-64- एंथ्रोपोलाजिकल सर्वे आफ इंडिया के निदेशक।

1965- असम के पहाड़ी जिलों के लिए नियुक्त एक अध्ययन-दल, जो श्री त्रिलोक सिंह, सदस्य, योजना आयोग के निर्देशन में कार्यरत था, से एक विशिष्ट अतिथि के रूप में संबंधित। भारत में सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन एवं महात्मा गांधी के राजनीतिक दर्शन पर कोलंबिया, कैलिफोर्निया (बर्कले), मिशिगन, ड्यूक, न्यूयार्क राज्य और हार्वर्ड विश्वविद्यालयों में व्याख्यान।

मैक्सिको विश्वविद्यालय के एशियन स्टडीज विभाग द्वारा भारतीय समाज और संस्कृति पर भाषण देने के लिए आमंत्रित।

हिरोशिमा विश्वविद्यालय, जापान द्वारा आमंत्रित : नगरीय समाजशास्त्र की अध्ययन पद्धतियों पर भाषण। नगरीय अध्ययन में विशिष्ट योगदान के लिए कांस्य पदक।

1966- क्षेत्र की शैक्षणिक समस्याओं पर प्रतिवेदन देने के लिए नेफा प्रशासन द्वारा आमंत्रित।

एशियाटिक सोसायटी द्वारा मानव विज्ञान में विशिष्ट कार्य के लिए शरतचंद्र राय स्वर्णपदक दिया गया।

1967-70 अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के आयुक्त (भारत सरकार) के रूप में कार्य।

1968- शिकागो विश्वविद्यालय, अमेरिका के निरंतर शिक्षा केंद्र द्वारा 'मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा' विषय पर आयोजित एक सम्मेलन में आमंत्रित।

1969- गुवाहाटी विश्वविद्यालय में महात्मा गांधी पर अतिथि प्रोफेसर।

हवाई विश्वविद्यालय के ईस्ट-वेस्ट सेंटर द्वारा आयोजित गांधी शांति विचार गोष्ठी में भाग लिया।

1971- कैंसर से बीमार पड़े।

बोस इंस्टीट्यूट में आचार्य जगदीशचंद्र बोस स्मृति व्याख्यान दिया : विषय 'भारतीय सभ्यता का एक मानव वैज्ञानिक दृष्टिकोण'।

बंगीय साहित्य परिषद के अध्यक्ष।

एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता के मानद सदस्य चुने गये।

1972- एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता के अध्यक्ष के रूप में तारकचंद्र दास स्मृति भाषण दिया : विषय था 'भारतीय समाज के अध्ययन की मानव वैज्ञानिक पद्धतियां'। 15 अक्तूबर, 1972 को देहांत।

निर्मल कुमार बोस के महत्वपूर्ण प्रकाशन

पुस्तकें (अंग्रेजी)

कल्चरल एंथ्रोपोलोजी, कलकत्ता, 1929 (संशोधित संस्करण-1953, 1961)

केनन्स आफ उड़ीसा आर्किटेक्चर, कलकत्ता, 1932

सेलेक्शंस फ्राम गांधी, अहमदाबाद, 1934 (संशोधित सं. 1952, 1972)

स्टडीज़ इन गांधीज्म, कलकत्ता, 1940 (संशोधित संस्करण-1947, 1962 और 1972)

(डी.सेन के सहयोग से) *एक्सकावेशंस इन मयूरभंज, कलकत्ता*, 1948

माडर्न बंगाल, कलकत्ता, 1959

पीजेंट लाइफ इन इंडिया, (संकलित), कलकत्ता, 1961

माई डेज विद गांधी, कलकत्ता, 1953

कल्चर एंड सोसायटी इन इंडिया, नयी दिल्ली, 1967

प्राब्लम्स आफ नेशनल इंटीग्रेशन, शिमला, 1967

कैलकटा 1964 : ए सोशल सर्वे, बंबई, 1968

द प्राब्लम्स आफ इंडियन नेशनलिज्म, बंबई, 1969

गांधीज्म एंड माडर्न इंडिया, गुवाहाटी, 1970

लेक्चर्स आन गांधीज्म, कलकत्ता, 1971

ट्राईबल लाइफ इन इंडिया, नयी दिल्ली, 1971

सम इंडियन ट्राईब्स, नयी दिल्ली, 1972

लेख (अंग्रेजी)

'द स्प्रिंग फेस्टीवल आफ इंडिया', *मैन इन इंडिया*, खंड, 7, 1927

'हिंदू सोशल आर्गेनाइजेशन, ए स्पेकुलेटिव एस्से', *विश्वभारती* मासिक, 1936

'द हिंदू मैथड आफ ट्राईबल एब्जोर्पशन', *साइंस एंड कल्चर,* 1941

'जिओग्राफिकल बैकग्राउंड आफ इंडियन कल्चर', *दि कल्चरल हेरिटेज आफ इंडिया,* खंड, 1950

'कास्ट इन इंडिया', *मैन इन इंडिया,* खंड, 31, 1951

'सम आसपेक्ट्स आफ कास्ट इन बंगाल', *जर्नल आफ अमेरिकन फोकलोर,* 1958

'कान्फलीक्ट एंड इट्स रिजोल्यूशन इन हिंदू सिविलाइजेशन', *जर्नल आफ दि डिपार्टमेंट आफ लेटर्स, कलकत्ता विश्वविद्यालय एन.एस,* 1960

'कैलकटा : *ए प्रीमेच्योर मेट्रोपोलिस', साइंटिफिक अमेरिकन,* 1965

'इंडियन विलेजस एंड एंशियंट टाउन', *जर्नल आफ दि इंडियन एंथ्रोपोलोजीकल सोसायटी,* 1966

'कम्पीटिंग प्रोडक्टिव सिस्टम इन इंडिया', *मैन इन इंडिया,* 1968

'एंथ्रोपोलोजीकल व्यू आफ इंडियन सिविलाइजेशन', *साइंस एंड कल्चर,* 1971

'लैंड-मैन रेशिओ इन ट्राईबल एरियास', *मैन इन इंडिया,* 1971

'मैथड्स इन एंथ्रोपोलोजीकल स्टडी आफ इंडियन सोसायटी', *जर्नल आफ दि इंडियन एंथ्रोपोलोजीकल सोसायटी,* 1972

'अवर इकनामिस्ट्स एंड गांधी', *मैन इन इंडिया,* 1972

बाग्ला (पुस्तकें और लेख संकलन)

उड़ीसा शिल्पशास्त्र, कलकत्ता, 1926

कोणार्क विवरण, कलकत्ता, 1926 (पुनर्मुद्रण, 1960)

नवीन और प्राचीन, कलकत्ता, 1930, 1949

परिब्राजकेर डायरी, कलकत्ता, 1940 (1945, 1959)

हिंदू समाजेर गरन, कलकत्ता, 1949

भारतेर ग्राम जीवन, कलकत्ता, 1971

गणतंत्रेर संकट, कलकत्ता, 1967

(रत्नमणि चट्टोपाध्याय और प्रियरंजन सेन के साथ)

गांधी मानस, कलकत्ता 1967 और *गांधीजी की चन?* कलकत्ता, 1946 (1948, 1968)

अनुक्रमणिका